वर्ष - 1 अंक - 2

(अगस्त—अक्टूबर) 2012

प्रबंधक संपादक

पंकज त्रिवेदी

*

संपादक

शीला डोंगरे

*

परामर्श

डॉ. सुधा ओम ढींगरा

डॉ. सिद्धेश्वर सिंह

*

मुखपृष्ठ

श्री अशोक खांट

*

वार्षिक सदस्यता : 150/- रुपये

आजीवन : 1500/- रुपये

(डाक खर्च के साथ)

इस अंक का मूल्य 40/- रुपये

*

सम्पादकीय कार्यालय

नव्या प्रकाशन,

ॐ, गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फीट रोड,

सुरेन्द्रनगर 363002 गुजरात

*

शाखा कार्यालय

अखिल हिन्दी साहित्य सभा (अहिसास)

फ्लेट नं. D-4, रोहन परिसर को.ऑ.हा.सोसायटी,

राणेनगर, नाशिक - 422009 (महाराष्ट्र)

E-mail-website

Nawya.magazine@gmail.com

Www.nawya.in

Mobile : 096625 14007

जरूरी सूचना

हमारे सहयोगी

वीनस केसरी	अल्हाबाद
संगीता सिंह तोमर	दिल्ली
संजय मिश्रा	रायपुर
संजय परमार	सुरेन्द्रनगर

'नव्या' के साहित्य इस ईमेल पर भेजें

nawya.magazine@gmail.com

* * *

रचना को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का अधिकार पूर्णरूप से सम्पादकीय मंडल का ही का होगा |

*

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार है | संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है |

* * *

मुद्रक

चंद्रिका प्रिन्टरी,

मिरझापुर रोड, अहमदाबाद – 380 001

chandrikaprintery@gmail.com

Mobile : 098253 36136

इस अंक में

संपादकीय	लुप्त होती लोककला	शीला डोंगरे	4
समीक्षा	शमशेर बहादुर सिंह	पंकज त्रिवेदी	5
कविता	पेट जब खाली होता है	डॉ. जाधव सुनिल	7
	अमरप्रेम	दीप्ति गुप्ता	8
	अचंभित मन	सी. पी. मिश्र	9
	जोकर	डॉ. मंजरी शुक्ला	13
	मज़लूम बच्चे की पुकार	सुशीला शिवराण	30
	बस सच्चाईयाँ ही	डॉ. स्वाति नलावडे	31
	दिले नादाँ	निशा कुलश्रेष्ठ	33
	माँ	समीर लाल 'उड़न तश्तरी'	34
	पगडंडी	कविता विकास	35
	वह' नदी ही तो है	'डॉ. सारिका गुल	37
	फिर भी जश्ने आजादी	हिमकर श्याम	38
	माँ ! अब लौट चलें ...	मंजू भटनागर	39
	अल्हड लडकी का चाँद	डॉ. सोनरूपा विशाल	40
	भाई बहन	चेतन रामकिशन	41
गज़ल	भीतरघात	सौरभ पाण्डेय	41
लघुकथा	तुलसी का पौधा	डॉ. बलवन्त व्यास	12
	भूख	संगीता सिंह तोमर	36
शख्शियत	डॉ. नसीम निकहत	वीजेंन्द्र शर्मा	14
आलेख	लायक से नालायक...	लोकेन्द्र सिंह	10
	राष्ट्रीय एकता अखंडितता	हसमुख परमार	18
कहानी	एक मुसाफिर की डायरी	मुकेश श्रीवास्तव	20
साक्षात्कार	डॉ. सुधा ओम ढींगरा	डॉ. अनिता कपूर	26
ललित	प्रेम की बात	मोहम्मद अहसान	32
विशेष	एक मधुर स्वप्न का नाम है - सुभाष	संजय मिश्रा " हबीब"	38
समाचार		विश्वगाथा	41-44
कार्टून		मस्तान सिंह	45
प्रकीर्ण	अतिथि की झलकियाँ और किताबघर	विश्वगाथा	45

लुप्त होती लोककला

"देश मेरा स्वतंत्र हुआ, छे: दशक पार किएं
गाँव-चौपाल, खेत-खलियान
कहां खोजू मेहनतकस किसान
बदला माहोल, चला आधुनिकता का दौर ..
जाने कहां खो गई मेरे देश की भोर"

सावन की रिमझिम बौछारों ने तीज-त्योहारों के संग दस्तक दी| मोरपंखो से सजा वासुदेव हाथ मे एकतारा लिए राग भैरवी अलापता दिखने लगा| अब ये दृश्य बहूत दुर्लभ होता जा रहा है| अंधी आदुनिकता की दौड़ मे गाँव शहरों मे तबदिल होते जा रहे है| गोबर मिट्टी के घरो ने ऊँची सद्रिकाओं का रूप ले लिया है| आँगन बालकनियों मे तबदिल होते जा रहे है| और अगर कभी कभार इन बालकनियो से भोर की बेला मे 'वासुदेव' की भैरवी कानो से टकराएगी तो क्या होगा ..? हाँ निश्चित हीपुराने दिन याद आएंगे..

भारत की प्राचीन सभ्यता ने विश्व मे अपना एक चिरपरिचित स्थान बनाया है| इन सांस्कृतिक धरोहर मे भारतीय लोककला का अपना एक सम्मानित स्थान है| दिन भर की जीतोड़ मेहनत के बाद गाँव-कस्बो की चौपालों पर अलाव के इर्द-गिर्द लोक गीतों के संग ताल धरना तो आम बात थी| इन गीतों मे शिकवे-शिकायते, मन-मनुहार, और थोड़ी बहूत मात्रा मे ज्ञानवर्धन का भी सामान होता| कुलीन वर्गो की नजाकत तो मुमकिन ना थी| लेकिन खेत-खलियानों के मेहनतकश मजदूरो के लिए लोककला ही मनोरंजन का साधन बनी| इस लोक कला के दायरे मे लोकगीतों के सात-सात नाच गाने , कसरती करतब, यहाँ तक की ज्योतिष विद्या भी शामिल हुई..| मै पहले ही स्पष्ट कर चुकी हूँ कि ये लोककलाकार धरती पुत्र थे| इनका इमान अपनी माटी से जुडा था लेकिन इनकी जमीन ज़मींदार की विरासत|

बरखा के बादलो पर निर्भर किसानी भला कहां तक गुजर-बसर चलाती ..! सो ये लोककला ही इन धरती पुत्रो के उदरनिर्वाह का साधन बनी| शालीन कुलीन गाँव जमीदार के आगे अपनी कला का प्रदर्शन कर के जो भी मिलता उसी मे निभा लेते| कभी कभार शहरों की सडको के किनारे अपने परिवार के सात सर्कस के कसरती खेल दिखाते 'डोमबारी' जनजाति के लोग नजर आजाते है| अपने ही कोड़े से खुद को फटकारता, चीथड़ों से बने लहंगे मे देवी के नाम पर दान मांग कर जीविका चलाने वाला 'पोतराज' | अपने हट्टे-कट्टे नंदी बैल के सात भविष बताता 'नंदिवाले', तमाशा की नाचगाने वाली 'कोलाटी' जाती के लोग| ये कुछ महाराष्ट्र की जनजातियाँ जिनके बारे मे मेरी जानकारी अनुसार मैंने उल्लेख किया| किन्तु अब इनके दर्शन अब दुर्लभ होते जा रहे है| साथ -साथ लोक कलाएं भी विलुप्त होती जा रही है | और ये मात्र 'महाराष्ट्र' का ही दुःख नहीं है | देश के अन्य प्रान्तों की लोककलाए भी इस दौर से झुझ रही है |

लोक कला हमारी सांस्कृतिक धरोहर है| इसे सहेजा जाना चाहिए| किन्तु जब तक हम इसके ह्रास का कारण नहीं समझेंगे इसके सहेजने का रास्ता भी नहीं खोज पायेंगे| लोककला के विलुप्त होने के कई कारण है लेकिन लोककला को कुलीनता का दर्जा ना दिया जाना प्रमुख कारण है | ***

पाठकों की कलम...

आदरणीय पंकज त्रिवेदी जी,
नमस्कार.
आज ही नव्या का प्रवेशांक प्राप्त हुआ. अतीव हर्ष हुआ. आपको व नव्या टीम को इस सराहनीय कार्य के लिए हार्दिक बधाई. आगे भी हिंदी साहित्य जगत में इसी तरह नए कीर्तिमान स्थापित करते रहें ..मेरी रचना को इस अंक में स्थान देने के लिए हार्दिक आभार. शुभकामनाओं के साथ ..

- ज्योतिर्मयी पन्त

श्रीमती शीलाजी,
आप नव्या संपादक जिम्मेदारी निभा रही यह बड़ी आनंददायी वार्ता है| प्रवेशांक का देल्ही में लोकार्पण हुआ था मगर मैं व्यस्तता के कारण उपस्थित नहीं रह पाया| मेरी शुभेच्छा | धन्यवाद|
भवदीय,
डॉ. बी. वी. गिरधारी
सदस्य , अ. भा. सा. परिषद , नाशिक शाखा .
Zonal Secretory and Joint Treasurer, Gokhale Education Society.
Vice Chairman,CHME Society (Bhonsala).
Government Authorised Translator.

कविता से जब कविता लापता हो रही है ऐसे माहौल में कविता को जिन्दा रखने का जो कार्य नव्या कर रही है , वाकई सार्थक कार्य है. बधाई आपको और समूचे नव्या परिवार को..

- ज्योति खरे

प्रिय पंकज जी,
'नव्या' का पहला अंक देखकर बड़ी ही प्रसन्नता हुई है । आपकी सूझ-बूझ और मशक्कत को सेल्युट करते है हम । पत्रिका को बहोत बहोत शुभकामनायें ।
- **अजय ओझा** (भावनगर-गुजरात)

प्रिय पंकज जी,
नमस्कार |

'नव्या' त्रैमासिक पत्रिका प्रवेशांक मिला| मुखपृष्ठ पर टैगोर का ओजस्वी चित्र मनभावन लगा| 'नव्या' का विषयवस्तु अभ्यासपूर्ण और परिश्रम से प्रस्तुत किया गया है |

आपका प्रयास जोखिमभरा अवश्य हैं लेकिन जैसे मैं आपको जानता हूँ, आप प्रयोगशील एवं झूझारु हैं| अतः आप सभी बाधाओं से अवश्य लोहा लेंगे| वैश्विक स्तर पर आपका व्यक्तित्व सादर स्वीकृत हो चूका है ये मैं भली भांति जानता हूँ| साहित्य क्षेत्र में 'तेजोद्वेष' सर्वविदित है| लेकिन कुछ कर दिखाना है तो सत्वतापूर्ण सात्विक धर्मयुद्ध करना ही पडेगा |

'नव्या' का प्रवेशांक अपना चरित्र प्रकट कर चूका है| उतरोत्तर गुणात्मक वृद्धि होती रहेगी एसी पूर्ण श्रद्धा है| सभी सर्जक को धन्यवाद दिल से देता हूँ | टैगोर विशेषांक का विचार दर्शाता है कि आप स्वयं संस्कार धनी हैं| मैं आपको ढेर सारी शुभकामनाएँ देता हूँ | नूतन अंक का इंतज़ार रहेगा|

भाई, आगे बढ़ो, वागेश्वरी का आशीर्वाद एवं पूरे विश्वमें व्याप्त बंधुजनों की मंगल कामनाएँ आपके साथ हैं|

- प्रा. डॉ. बलवन्त व्यास
'जय', स्कूल नं. १७ के सामने, मेघाणीबाग रोड, सुरेंद्रनगर-३६३००२ गुजरात

कविश्री शमशेर बहादुर सिंह

सूर्योदय

प्रातः नभ बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
नील जला में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो!
और....
जारू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है|

कला के अनेक अभिगम है उनमें से एक कविता है जो अंत:करण से उभरती है| प्रकृति के किसी भी कार्य को यदि मन की खूबसूरती से किया जाएं तो वह हर दिल पर छा जाता है| उसमें शब्दों के साथ रंगों का मनमोहक संयोजन हो जाए तो खूबसूरती दुगनी हो जाती है| मानव मन की अंतरंग सुंदरता को भाँपकर शब्दों के रूप में गढनेवाला कवि जब दिल के साथ दिमाग पर छाने लगा तो कविता के संसार को नया मंच प्राप्त हुआ| भाषा के माध्यम से चित्र प्रतिबिंबित करना, यही खासियत हैं शमशेर की रचनाओं में|

दूब

पलकों पर हौले-हौले
तुम्हारे फूल से पाँव
मानों भूलकर पड़ते
ह्रदय के सपनों पर मेरे!
अकेला हूँ आओ!

रचनाकार की रचनाओं की समीक्षा करना कोई आसान काम नहीं, वह तो साधना है| इसमें कलाकार की कला के साथ पाठक का दृष्टिकोणभी सम्मिलित होता है| अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने पर रचना का स्वरूप बदलता नहीं पर परिवर्तित जरूर होता है|

दृष्टिकोण भी सम्मिलित होता है| अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने पर रचना का स्वरूप बदलता नहीं पर परिवर्तित जरूर होता है, किन्तु गहराई में जाते ही वास्तविकता दृष्टिगोचर होती है| अपनी काव्य समझ को पैना करने के लिए मैंने उन्हें बार बार पढ़ा| शमशेरजी को पढना मुझे आवश्यक नहीं, अनिवार्य भी लगा है| उन्हें ध्यान से पढने पर चित्र अपने आप उभरता है| कविता के साथ प्रतिबिंब भी स्पष्ट हो जाता है|

शमशेरजी की शिष्या और हिन्दी साहित्यकार डॉ. रंजना अरगडे गुजरात में मेरे शहर सुरेंद्रनगर में प्राध्यापिका तब कवि शमशेरजी उनके साथ रहते थे| काफ़ी करीब से उन्हें देखा है और समझने की कोशिश भी की है|

शमशेर की प्रस्तुति में हलके रंगों का मनोरम प्रयोग हमें आकर्षित कर लेता है| उनके काव्य बिम्ब पसंदीदा रंगों के छाया बिम्बों के अनुरूप विलयित रंगों में उनके समूचे सृजन का अभिन्न अंग बन रहे|

'धूप कोठरी के आईने में'- कविता याद आती हैं..... ज़िंदगी को समझने की बात तो सब करते है, किन्तु शमशेर ने कविता को मनोवैज्ञानिक आधार पर समझने की बात अनुभूति और अपने अनुभव की समझ और जानकारी से सुलझाकर, स्पष्ट करने की है|

स्वयं को पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाया| यह आधार इस युग के हा सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए जरूरी है| शमशेर की कविता में भाषा महत्त्व पर तो पूरा अध्याय के महत्त्व पर तो पूरा अध्याय लिखा जा सकता है| शब्दों के क्रम का संयोजन, उसका निख़ार और पाठक को मुग्ध कर देने की क्षमता मैंने शमशेर की कृतियों में पाई है| शब्दों की आपसी टकराहट के साथ ही उनकी सार्थकता का समावेश कविता के भावार्थ को मन की गहराई तक ले जाता है| शब्दों की रगड़ से जो स्पष्ट होता है वही वास्तविक भाव है| कविता में अभिधात्मक अर्थ की अपेक्षा व्यंजनात्मक अर्थ ही प्रिय लगता है|

ऐसा कहा जाता है कि जब कविता होती है तब शब्दों की भूमिका बदल जाती है और समय के बहते निरंतर बहाव से उसके प्रवाह में निश्चितता आती है| जिस काव्य में उत्तम ध्वन्यात्मकता हो उसे मधुर यानी मीठा माना जातापात करें तो शमशेर की रचनाओं से इसकी और बेहतर पुष्टि होती है| उन्हों ने शब्दों की जड़ों तक जाकर ध्वनि और अर्थ दोनों की समझ को साक्षी मानकर ही मानों रचना की हैं| शब्दों की ध्वनियाँ ही मन और मस्तिष्क पर प्रभाव छोड़ पाती हैं| भाषा के आधार पर ही शमशेर अपने समकालीन और वर्त्तमान कवियों से पृथक व श्रेष्ट माने जाते हैं|

कविता के प्रभाव के लिए शब्दों के निश्चित क्रम, विराम और ध्वनि संयोजन के साथ प्रस्तुतीकरण भी अपना नियत स्थान रखता है| परंपरागत उर्दू और खड़ी बोली दोनों में परिपक्व होने के कारण शमशेरने दोनों ही भाषाओँ अदभुत रचनाएं दी है| गार फरमाएं उनकी एक गझल के दो शेर...

फिर निगाहों ने तेरी दिल में कहीं चुटकी ली
फिर मेरे दर्द ने पैमानवफ़ा का बांधा
और तो कुछ न किया ईश्क में पडकर दिल ने
एक इन्सान से इन्सान वफ़ा का बांधा

उनके लाजवाब सॉनेट के अंश पर एक नज़र डालें.....

चुका भी नहीं हूँ मैं नहीं
कहाँ किया मैंने प्रेम
अभी !
जब करूँगा प्रेम
पिघल उठेंगे
युगों के भूधर
उफान उठेंगे
सात सागर !

कवि का कोमल ह्रदय जब प्रेम की प्रस्तुति करता है तो प्रेम की स्पष्टता और भी खुलकर सामने आती हैं| सावन ऐसी ही रचना है शमशेर की जिसमें प्रेमिका की निष्ठुरता का सजीव चित्रण है| आशिक का प्रेमालाप और प्रेमिका के कठोर होने का ढंग मुखरित होता है| ये अलग बात हैं कि शमशेर की कविता को आरम्भ से पढना जरूरी हैं | बीच से पढने पर कविता के अंदर का प्रवाह स्पष्ट नहीं समझ आता हैं| उससे बात अधूरी सी लगती है या हम पूरी तरह से कविता के मूल तक जा नहीं पाते|

जहाँ में अब तो जितने रोज अपना जीना होना है,
तुम्हारी चोटें होनी है हमारा सीना होना हैं |

उनकी भाषा में गज़ब का पैनापन हैं | कथन की सादगी और भावार्थ का सौंदर्य ऐसा है कि पाठक बड़ी सहजता से मुस्कुरा उठता है| उनकी गज़लों के पढने का तुक और लय उर्दू की परम्परा शैली के अनुसार हैं| अपनी एतिहासिक रचनाओ के माध्यम से वे तत्कालीन अन्याय, लाचारी, उग्रता, रक्त-रंजिश पर इस प्रकार पभाव डालते हैं कि पाठक को ऐसा महसूस होता है कि वह उसकी जीवन यात्रा का एक अटूट हिस्सा है| अपनी लिखनी से मानवता के पतन को दर्शाते हुए अत्याचार के विरुद्ध बहुत कुछ रचा...

यह क्या सूना है मैंने कि, दो रुपाए सा है आज ।
कुछ शहर बंबई की जबानी खबर है आज |
(या ग्वालियर की कविता)

समाज के प्रति एक कवि, लेखक, रचनाकार की जिम्मेदारी को शमशेर ने बखूबी समझा भी और निभाया भी...

भाग बनाने में दिलचस्पी नहीं ली| ऐसी परिस्थितियों से खुद को अलग रखना ही वह अच्छा समझते हैं| यूं तो मार्क्सवाद के पक्षधर समझे जाते रहे, परन्तु मार्क्सवाद की छाया उनकी कविताओं में कभी नहीं उभरी|

चाँद से थोड़ी सी गप्पें.....
हमको बुद्धू ही निरा समझा है |
हम समझते ही नहीं जैसे कि
आपको बीमारी है :
आप घटते हैं तो ही चले जाते हैं,
और बढाते ही चले जाते हैं –
दम न लेते हैं जब तक बिलकुल ही
गोल ण हो जाएँ,
बिलकुल गोल |
यह मरज आपका अच्छा ही नहीं होने में....

स्वतंत्रता को पारिभाषित करते हुए शमशेर कहते हैं कि समाज की क्रूर परिस्थितियों से स्वतंत्रता और दरिद्र चिंतन से मानसिक स्वतंत्रता आवश्यक है| जब तक व्यक्ति के विचार साफ़ सुथरे नहीं होंगे, वह समाज को गति नहीं दे सकता| एकता को महत्त्व देते हुए शमशेर ने कहा समाज की प्रगति के लिए एकता आवश्यक है| कवि तो संवेदना का शिल्पी है| उसकी संवेदना निजता से होकर समाज, देश-विदेश से विश्व के सन्दर्भों तक पहुँच जाती है|

***

कविता • डॉ . जाधव सुनिल गुलाबसिंग

पेट जब खाली होता है...

पेट जब खाली होता है
और हालत विरोधी
भूख जब हावी होती हैं
और भोजन होता हैं क्रोधी |

तब हाथ में खाली कटोरा आता है
भरे पेट के लोगों के दर पर
कुछ पाने की आशा में
वह सुखा शरीर खड़ा होता है |

नन्हें मासूम बच्चों की छातीयों
से झांकती हड्डियां
आँखों में भोजन का सपना लिए
मुस्कुरा जाती हैं हड्डियां |

वह भूक से परेशानहड्डी और मांस का इंसान
वह भी जीना चाहता हैं
बिना किसी खास जान-पहचान |

***

अमरप्रेम

आसमां के तले भी आसमां था
वितान सा रुपहला इस तना था
तिलस्मे-जीस्त यूं पसरा हुआ था
चंद पूरी तरह निखरा हुआ था
प्रणय के खेल हंस-हंस खेलता था
सोमरस 'सोमा' पे उंडेलता था

इधर इक 'सोमलता' धरती पे थी
देख कर चंद को जो खिल उठी थी
प्रिय के प्रणय से सिहरी हुई सी
सिमटती, मौन, सहमी- डरी सी
लहकती, लरजती, कंपकंपी से भरी थी
सराबोर शिख से नख तक, खड़ी थी;

ना कह पाती- 'नहीं प्रिय अब संभलता
करो बस, मुझ से अब नहीं सम्हालता'
समोती झरता अमिय पत्तियों में
सिमट जाती मिलन प्रिय-प्राणयों में
सिमटती दूरियां, धरती व अम्बर
महकते वक्त के, मौसम के तेवर;

मिलन की बीत घड़ियाँ कब गई, और
दिवस बिछोह का आ बैठा सर पर
दिवस बिछोह का आ बैठा सर पर
लगा दुःख से पिघलने चाँद नभ पर
परेशान, विह्वल, सोमा धारा पर
' जियूंगी बिन पीया कैसे?' विकल थी
पल इक-इक था ज्यूं, युग-युग सा भारी;

थाम कर सोमा की तनु-काय न्यारी
अनुरिक्त से बाँध बाहुपाश प्यारी
चाँद अभिरत, तब अविराम बोला
ह्रदय की विफलता का द्वार उसने खोला;

"मैं लौटूंगा प्रिय देखो तुरत ही
तुम्हारे बिन ना रह पाऊंगा मैं भी...
के तुम प्रिय मेरी, प्राण सखा हो,
के मेरे हर जानम की आत्म ऊर्जा हो;

तभी से चाँद हर दिन-दिन है घटता
लता 'सोमा' का तन पीड़ा से कटता
ज्यूं पत्ती इक-इक कर गिरती जाती
जान उसकी तिल-तिल निकलती जाती

दिवस पन्द्रह नज़र आता न चंदा
तो तजती पत्तियाँ 'सोमा; भी पन्द्रह
उजड, एकाकी सी बेजान रहती
दिवस पन्द्रह पडी कुंठा ये सहती;

तभी नव-रूप धर चंदा फिर आता
खिला अम्बर पे झिलमिल मुस्कुराता
झालाक पाकर प्रियतम की सलोनी
ह्रदय सोमा का भी तब लहलहाता;

रंगों में लहू प्राणाधार बन कर
दौडता ऊर्जा का संचार बन कर
फूट पडती तभी कोमल सी पत्ती
लड़ी फिर दिन ब दिन पत्तों की बनती;

उफक पर चाँद जब बे-बाक खिलता
चैन सोमा को तब धरती पे मिलता
सफर पूरा यूं होता पन्द्रह दिनों का
प्रणय-उन्मत्त चाँद गगन में चलता
छाता सोमा की तब होती निराली
ना रहती विरह की बदरी भी काली;

सिमटते चाँद संग पत्ती का झरना
निकलते चाँद पर पत्ती का भरना
लिखा किसने अनूठा ये समर्पण
ये सोमा-चाँद की निष्ठा का दर्पण
दें अदभुत अजब मनुहार की ये
है दुःख-हरनी कहानी प्यार की ये !

***

कविता • सी. पी. मिश्र

अचंभित मन

हतभ्रत हुआ देखकर मै यह
बुनकर एक कुशल बहुतेरा,
फिरा रहा 'कर' हत्कार्धे पर
बना रहा है चित्र चितेरा ।

सूत ख़तम होते न होते,
तुरंत जोड़ता वह धागे को,
जोड़-गांठ कही नजर न आती
जैसे छेद रहा सुन्दर रागों को ।

खड़ा अचंभित मै रहा सोचता,
किस तरह भला वो कर पाता है
मैंने तो बुना एक ही रिश्ता,
गांठ ही गांठ नजर आता है।

***

आलेख • लोकेन्द्र सिंह

लायक से नालायक तक का सफर

भारतीय सिनेमा के १०० साल

भारतीय हिन्दी सिनेमा यानी बोलीबुड को १००वां साल लग गया है| पता नहीं यह बोलीवुड का शैशव काल ही चल रहा है या फिर तो जवानी की दहलीज पर है, यह भी संभव है कि वह सठियाने के दौर में हो| खैर, जो भी हो, इन ९९ सालों में भारतीय सिनेमा में कई बालाव देखे गए| कई मौके ऐसे आए जब बोलीवुड के कारनामे से हमारा सीना चौड़ा हो गया| कई बार बोलीवुड ने लज्जित भी खूब कराया| शुरुआती दौर में भारतीय सिनेमा लायक बना रहा|समाज को शिक्षित करता रहा| देश-दुनिया को भारतीय चिंतन, परम्परा और इतिहास से परिचित कराता रहा | लेकिन, नई शताब्दी के पहले दशक की शुरुआत से ही इसके कदम बहकाने लगे | धीरे-धीरे यह ना-लायक हो गया | फिलहाल इस नालायक बोलीवुड की रील बेहद डर्टी है |

यह तो सभी जानते हैं कि भारत में सिनेमा की शुरुआत दादा साहब फाल्के ने की | दादा साहब फाल्के का सही नाम धोंदीराज गोविन्द फाल्के था | १९११ में उन्होंने ईसा मसीह के जीवन पर बनी फिल्म देखी | इसके बाद उनके मन में विचारों का ज्वार उमडने लगा | भारत के महापुरुषों और इतिहास को आधार बनाकर फिल्म बनाने के विचार दादा साहब के मन में आने लगे| जब विचारों ने मन-मस्तिष्क पर पूरी तरह से कब्जा कर लिया तो उन्हों ने फिल्म बनाने का संकल्प लिया| फिल्म निर्माण की तकनीकी सीखी | वहाँ से कुछ जरूरी उपकरण लेकर वे भारत वापस आए| काफी मेहनत-मशक्कत के बाद उन्हों ने भारतीय जन-जन में रचे-बसे चरित्र राजा हरिश्चंद्र पर फिल्म बनाई|

३ मई १९१३ को भारतीय सिनेमा की पहली फिल्म प्रदर्शित हुई| यह मूक फिल्म थी| दादा साहब को उनके साथियों ने खूब कहा कि फिल्म आईडिया बकवास है, तुम्हारी फिल्म कोई देखने नहीं आएगा, भारत की जानता को फिल्म देखने का सऊर नहीं| लेकिन, 'राजा हरिश्चंद्र' की लोकप्रियता ने सारे कयासों को धूमिल कर दिया| इस तरह भारत में दुनिया के विशालतम फिल्म उधोग बोलीवुड की नींव पडी |

यहां गौर करने लायक बात है कि दादा साहब जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति ने एक सुने-सुनाए, जन-जन में रचे-बसे चरित्र पर फिल्म क्यों बनाई ? संभवत: उन्हें सिनेमा के प्रभाव का ठीक-ठीक आकलन था | सिनेमा लोगों के अंतर्मन को प्रभावित करता है |

उनके जीवन में बदलाव लाने का सशक्त माध्यम है | इसके अलावा उनके मन में सिनेमा से रुपयों का ढेर लगाने का ख्याल नहीं था | ईसा मसीह के जीवन पर बनी फिल्म को देखकर उनके मन में पहला विचार यही कोंधा कि भारत के महापुरुषों पर भी फिल्म बनानी चाहिए | ताकि लोग उनके जीवन से प्रेरणा लेकर स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकें | हरिश्चंद्र सत्य की मूर्ति हैं | सत्य मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी पूंजी, उपलब्धि और सर्वोत्तम गुण है |

'राजा हरिश्चंद्र' के बाद भी लंबे समय तक भारत में बनाई जाने वाली फ़िल्में संस्कार और शिक्षाप्रद थीं | १४ मार्च १९३१ को प्रदर्शित पहली बोलती फ़िल्में संस्कार और १९३७ में प्रदर्शित पहली रंगीन फिल्म किसान कन्या की कहानी साहित्य से उठाई गई थी| भारतीय सिनेमा लंबे समय तक सीधे तौर पर भारतीय साहित्य से जुडा रहा | बंकिमचंद्र और प्रेमचंद की कृतियों पर सिनेमा रचा गया, जिसने समाज को दिशा दी |

२१वीं सदी की शुरुआत से ही बोलीवुड के रंग-ढंग बदलने लगे| महेश भट्ट जैसे तमाम भटके हुए निर्देशकों ने भारतीय सिनेमा की धुरी साहित्य और संस्कृति से हटाकर नग्नता पर टीका दी| मनुष्य के दिमाग को शिक्षा देने वाले साधन को दिमाग में गंदकी भरने वाला साधन बना दिया| 'आज बन रहीं फिल्मे परिवार के साथ बैठकर देखने लायक नहीं है'– यह विधान बोलीवुड के लिए आज हर कोई कहता है| इसके बावजूद भट्ट सरीखे निर्देशक कहते हैं कि हम वही बना रहे है जो समाज देखना चाहता हैं |

रचनात्मक सिनेमा गढने के लिए गुरुदत्त, हिमांशु रॉय, सत्यजीत रे, व्ही.शांताराम, बिमल रॉय, राजकपूर, नीतिन बोज़, श्याम बेनेगल जैसे निर्देशकों को हमेशा याद किया जाएगा | लेकिन २१वीं सदी की शुरुआत से ही बोलीवुड के रंग-ढंग बदलने लगे | महेश भट्ट जैसे तमाम भटके हुए निर्देशकों ने भारतीय सिनेमा की धुरी साहित्य और संस्कृति से हटाकर नग्नता पर टीका दी | मनुष्य के दिमाग को शिक्षा देने वाले साधन को दिमाग में गंदकी भरने वाला साधन बना दिया | 'आज बन रहीं फिल्मे परिवार के साथ बैठकर देखने लायक

नहीं है' – यह विधान बोलीवुड के लिए आज हर कोई कहता है | अब ये किस समाज से पूछकर सिनेमा बनाते है यह तो पता नहीं| लेकिन, मेरे आसपास और दूर तक बसा समाज तो इस तरह की फिल्म देखना कतई पसंद नहीं करता| खासकर अपने माता-पिता, भाई-बहन और बच्चों के साथ तो नहीं ही देखता| ऐसी फिल्मे समाज देखना नहीं चाहता इसका ताज़ा उदाहरण है – टेलीविज़न पर डर्टी पिक्चर के प्रसारण का विरोध |

यहाँ इस बात को भी समझिए कि समाज घर में तो ऐसी फिल्म नहीं देखना चाहता लेकिन घर के बाहर उसे परहेज नहीं हैं| इसी डर्टी पिक्चर की कमाई यह सच बताती है| लेकिन, इस सब में एक बात साफ़ है कि डर्टी टाईप की फ़िल्में समाज हित में नहीं है| डेल्ही बेल्ही, लव सेक्स और धोखा, ब्लड मनी, मर्डर, हेट स्टोरी, जिस्म और आनेवाली फिल्म जिस्म -२ (इसमे पोर्न ऐक्ट्रेस नायिका है) जैसी फ़िल्में समाज में क्या प्रभाव छोड़ रहीं है ये कहने की जरुरत नहीं हैं| इनके प्रभाव से निर्मित हो रहा समाज भारत के लोगों की चिंता जरुर बढ़ा रहा लेकिन वे भी हाथ

और मुँह बंद किए बैठे हैं ! भारतीय सिनेमा के पिछले पाँच-छह सालों को देखकर इसका आने वाला भविष्य उज्जवल नहीं दिखता| आज बोलीवुड १००वें साल में प्रवेश कर रहा है, इसकी और समाज की बेहतरी के लिए निर्माताओं, निर्देशकों और दर्शकों को विचार करना होगा| निर्माता-निर्देशकों को ये भी विचार करना होगा कि क्या कैमरे को नंगाई के अलावा कहीं और फोकस नहीं किया जा सकता? दर्शकों को विचार करना होगा कि जिस सिनेमा को हम अपने परिवार के साथ नहीं देख सकते या जिसे हम अपने बच्चों को नहीं दिखा सकते, उसका बहिष्कार क्यों न किया जाएँ?

***

लगता हैं शहर सारा सुलग रहा हैं आज
हर इन्सान अंगारे से भरा हुआ हैं आज !

- पंकज त्रिवेदी

लघुकथा • डॉ. बलवन्त व्यास

तुलसी का पौधा

आकाश ने ज़ोरों से दरवाजे को दीवार से टकराते हुए घर में प्रवेश किया| और गुस्से से पत्नी मीना को कहा;
"मीना, अब तुम्हारे दिल को ठंडक मिली न? छोड़ आया मैं अपनी बूढ़ी माँ को...! आख़िरकार तुमने मनमानी कर ली न?"

फिर आँगन में आकर तुलसी के सूखे पौधे को मूल समेत उखाड फेंका और उसी से छिली हुई अपनी हथेलियों को देखता रहा... !

***

ईस जहाँ से जन्नत तक का दायरा हैं मेरा
अब जीत लूं कुछ भी क्या फ़ायदा हैं मेरा !

- पंकज त्रिवेदी

जोकर

मैंने कल इक शादी में
मोटा सा एक जोकर देखा
हँसते चेहरे पर उसके
ढेर पावडर पोते देखा
उसे देख दौड़ते बच्चे
हँसते और मचलते बच्चे
प्यार से उसके पास जाते
हाथ मिला खुश हो जाते
जहाँ कही भी वो जाता
हर चेहरा खिल जाता
मोटा पेट जब उसका हिलता
बूढों का भी दिल खिलता
फिर एक कोने में दिखा वो
बहते आंसू हुआ पोंछता
दूर कही इस भीड़ से
तन्हाई में कुछ सोचता
कहता जाता था खुद से
भूखा हूँ मैं दिनभर से
नकली हंसी रहा हँसता
दुःख मेरा है सबसे सस्ता
सबके हाथ में थाली है
पर मेरा पेट खाली है
बच्चे राह ताकते होंगे
हर आहट पे जागते होंगे
भूखे पेट सोएंगे कैसे
सूखे आंसूं रोयेंगे कैसे
हँसता हूँ मैं सबके आगे
रातों को में रोता हूँ
दिन रात हूँ मेहनत करता
ख्वाबों में ही सोता हूँ
अमीरों के बच्चों को मैं
गुदगुदाकर हँसाता हूँ !

***

डॉ. नसीम निकहत

तारीख़ गवाह है कि रिवायत की आड़ में समाज ने औरत की शख्सीयत को परदे से कभी बाहर नहीं निकलने दिया और जहाँ तक मर्दों का बस चला अपनी मरदाना फ़ितरत की चिलमन से उन्होंने औरत के हुनर को अन्दर ही छिपाए रखा मगर जैसे - जैसे वक़्त बदलता गया औरत मर्दों की बनाई इस क़फ़स से बाहर निकल अपने हौसले से परवाज़ करने लगी !

पाकिस्तान की मशहूर शाइरा परवीन शाकिर जब पहली मरतबा हिन्दुस्तान आई और दिल्ली के एक मुशायरे में ग़ज़ल पढ़ रहीं थी तो उसी मरदाना फ़ितरत के नामवर शाइर मरहूम फ़िराक़ गोरखपुरी ने परवीन साहिबा की ग़ज़ल पे तन्ज़ करते हुए कहा था कि " वाह वाह क्या मरदाना ग़ज़ल पढ़ी है ,जी चाहता है कि चूड़ियाँ पहन लें "!

इस पे परवीन शाकिर ने जवाब दिया लिजिये हुज़ूर

अब औरत की ग़ज़ल सुनिए :---

हुस्न के समझने को उम्र चाहिये जानाँ
दो घड़ी की चाहत में लड़कियां नहीं खुलतीं

ठीक ऐसा ही जवाब हमारे अहद की एक शाइरा ने इस पुरुष प्रधान समाज को अपनी शाइरी से दिया है उनका ये शे'र सुनके तो समाज अपने निज़ाम पर ख़ुद शर्मिन्दा हो जाता है :--

मेरे लिए ये शर्त ,मुझे सावित्री बनकर जीना है
और तुझे इसकी आज़ादी,जिस पर चाहे डोरे डाल

अपनी शाइरी से आईना दिखाने वाली और अपने औरत होने पे फ़ख्र करने वाली इस शाइरा का नाम है डॉ. नसीम निकहत ! तक़रीबन तीस साल से शाइरी की दुनिया में डॉ. नसीम निकहत औरतों की नुमाइंदगी हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान से बाहर जहाँ - जहाँ उर्दू बोली - समझी जाती है कर रहीं है !

नसीम निकहत का जन्म ख़ुमार बाराबंकवी के क़स्बे बाराबंकी में 10 जून 1959 को हुआ और जब नसीम साहिबा सिर्फ़ डेढ़ बरस की थी तो अपनी फूफी के यहाँ लखनऊ में गोद चली गई यानी इनकी पूरी परवरिश तहज़ीब के शहर लखनऊ में हुई ! इनकी फूफी शमीम आरा आपी रिवायत के बुर्के में रहने वाली ज़हीन और पर्देदार ख़ातून थी ! उन्हें फ़ारसी के हज़ारों शे'र याद थे , घर में नशिस्तें होती रहती थी और औरतें चिलमन के पीछे से बैतबाजी(शाइरी की अन्ताक्षरी) में हिस्सा लेती थी यही सिलसिला नसीम साहिबा के ज़हनो-दिल पर तारी हो गया मगर फूफी के सख्त मिज़ाज के चलते नसीम साहिबा के अन्दर की शाइरा उस वक़्त बाहर नहीं आ पाई ! पंद्रह बरस की कम उम्र में नसीम साहिबा का निकाह एक शाइरी पसंद ख़ानदान में हो गया

एक ख़ातून के लिए ससुराल यूँ तो क़फ़स (क़ैदखाना) का दूसरा नाम होता है पर नसीम साहिबा के लिए ससुराल किसी आज़ाद फ़जां से कम न थी इनके ससुर डॉ. गौहर लखनवी, लखनऊ के जाने -माने शाइर थे सो फिर से नसीम साहिबा को शाइरी का माहौल मिल गया और साथ - साथ आगे पढ़ने की इजाज़त भी !

मुहर्रमके दिनों में लखनऊ में ढाई महीने तक नौहे पढ़ने का चलन था और वहीं से नसीम साहिबा को तरन्नुम में पढ़ते सुन माहिर लखनवी साहब ने कहा कि आप इतना अच्छा कहती है और माशाअल्ला तरन्नुम भी ग़ज़ब का है तो आप मुशायरे क्यूँ नहीं पढ़ती ?यहीं से मुशायरों का सिलसिला शुरू हुआ ! जिस देवां के शाह वारिस अली शाह के मुशायरे तक पहुँचते - पहुँचते शाइरों को बरस लग जाते है नसीम निकहत ने अपने मुशायरे पढ़ने का आग़ाज़ वहीं से किया और 80 के दशक के पहले साल से इन्होने बा-कायदा मुशायरों में शिरक़त करना शुरू कर दिया ! नसीम साहिबा ने अपनी स्कूल से लेकर एम्. ऐ तक की पूरी तालीम लखनऊ से की और फिर वाक़यातेकर्बला मौज़ू पे शोध कर पी.एच डी. की उपाधि भी लखनऊ विश्वविद्यालय से हासिल की !

डॉ. नसीम निकहत की शाइरी एक औरत की ज़िन्दगी का वो फ़लसफ़ा है जिसे सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है ! उनकी एक ग़ज़ल है जिसमे हिन्दुस्तानी औरत के जीवन का तवील (लम्बा) सफ़र सिर्फ़ एक मतले और तीन शे'रों में बयान होता है ये ग़ज़ल नसीम निकहत की शनाख्त भी है :--

फिर अजनबी फ़ज़ाओं से जोड़ा गया मुझे
मैं फूल थी सो शाख़ से तोड़ा गया मुझे
मिट्टी के बर्तनों की तरह सारी ज़िन्दगी
तोड़ा गया मुझे कभी जोड़ा गया मुझे
हाथों में सौंप कर काग़ज़ की एक नाव
दरिया के तेज़ धारे पे छोड़ा गया मुझे
मैं ऐसी शाख़ थी जो लचकती न थी कभी
फूलों का बोझ डाल के मोड़ा गया मुझे

नसीम निकहत साहिबा ने औरत के उस एहसास को शाइरी बनाया है जिसे लोग कहते हुए भी कई मरतबा सोचते हैं की ये कहें या न कहें , बात तीखी ज़रूर है मगर है सच्ची :-

शाख़ को झुकना ही पड़ता है ,समर जैसा भी हो
अहमियत है सिर्फ़ साये की शजर जैसा भी हो
तुम बहुत अच्छे हो, दुनिया ख़ूबसूरत है तो क्या
लौटकर वापिस वहीं जाना है ,घर जैसा भी हो
साथ चलना मसलहत भी और मजबूरी भी है
रास्ता तो काटना है ,हमसफ़र जैसा भी हो

उनके अन्दर की औरत बस इतना कह लेने भर से ख़ामोश नहीं होती वो अपनी पीड़ा को काग़ज़ पे यूँ भी उकेरती है :--

दिन ख़्वाबों को पलकों पे सजाने में गुज़र जाय
रात आये तो नींदों को मनाने में गुज़र जाय
जिस घर में मेरे नाम की तख्ती भी नहीं है
एक उम्र उसी घर को सजाने में गुज़र जाय

****

इस सलीके से निभाई मैनें ज़िम्मेदारियाँ
फूल को खुशबू तो शाख़ों को समर मैनें किया
ये मेरे अन्दर की औरत तो घरेलू ही रही
ये तेरे दीवारों दर थे इनको घर मैनें किया

संवेदनाके बिना शाइरी अधूरी है और डॉ. नसीम निकहत हस्सास (संवेदना) का पर्याय है ! एक बार जयपुर में घटित किसी भ्रूण - हत्या के वाकये को जब उन्होंने टी.वी पे देखा तो नसीम साहिबा की आँखें नम हो गई और उन्ही आंसुओं की सियाही से उन मासूम बच्चियों की जानिब से एक मतला उन्होंने कहा जिन्हें गर्भ में ही क़त्ल कर दिया जाता है :-

हमारे क़ातिल से कोई पूछे ,भला हमारा कुसूर क्या है
जो रहमे-मादर में मारते हो ख़ता हमारी हुजूर क्या है

(रहमे-मादर - गर्भ)

ग़ज़ल कहते वक़्त डॉ. नसीम निकहत शाइरी की रिवायत के साथ पूरा इन्साफ करती है वे अपने ख़ूबसूरत लफ़्ज़ों से ग़ज़ल के नाप का ऐसा लिबास तैयार करती है कि जिसे पहन दयार से जब गुज़रती है तो बड़े- बड़े नक्काद भी अपनी निगाह इज़्ज़त के साथ उठाते है !

डॉ. नसीम निकहत की शाइरी में एक तरफ़ अगर औरत का दर्द है तो दूसरी तरफ़ उनके अशआर रूमानियत की खुश्बू भी फैलाते है :-

लोग कहते है के ये इश्क़ का सौदा क्या है
मेरी आँखों ने तेरी ज़ात में देखा क्या है
अब किसी और से दिल मिलता नहीं क्यूँ आख़िर
कोई बतलाये के उस शख्स में ऐसा क्या है
कैसा ये शौर है क्या छन्न से हुआ है आख़िर
दिल नहीं,शीशा नहीं फिर यहाँ टूटा क्या है

शाइरी की दुनिया की एक सच्चाई ये भी है कि किसी शाइरा को मोतबर होने में बड़ा वक़्त लगता है जबकी कोई शाइर कम वक़त में मोतबर हो जाता है आज डॉ. नसीम निकहत का नाम अदब में बड़े एहतराम के साथ लिया जाता है मगर नसीम साहिबा भी उस दौर से गुज़री है जहाँ उन्हें क़दम - क़दम पे अपने आपको साबित करना पड़ा , इस कसक को उन्होंने अपनी एक मक़बूल ग़ज़ल का हिस्सा यूँ बनाया :-

शख्सीयत का जब फ़र्क़ था लफ़्ज़ भी मेरे बौने हुए
मैं जो बोली वो बेकार था, वो जो बोला अदब हो गया

और फिर इसी ग़ज़ल के एक और शे'र में घर की चार दिवारी में क़ैद सिर्फ़ घर की ही होकर रहने वाली ख़ातून का मर्म किस सलीक़े से बयान किया---

मैं उसे ज़िन्दगी सौंप कर उसके आँगन की बांदी रही
मुझको दो रोटियाँ देके वो ये समझता है रब हो गया

डॉ. नसीम निकहत की एक पहचान अगर मुशायरे है तो काग़ज़ पर उतरे उनके क़लाम की पजीराई भी हर तरफ़ हुई है इनकी सबसे पहली किताब "धुंआ -धुंआ" 1984 में मंज़रे-आम पे आई ,फिर 1991 में "भीगी पलकें" ,1995 में "फूलों का बोझ" , 2005 में "ख़्वाब देखे ज़माना हुआ " और 2010 में "मेरा इंतज़ार करना" पाठकों के लिए एक सौगात बन के आई !

डॉ. नसीम निकहत को मिलने वाले एज़ाज़ की फेहरिस्त ज़रा लम्बी है फिर भी कुछ का ज़िक्र किये देता हूँ :- नवाए मीर अवार्ड (लखनऊ) , याद ए फ़िराक अवार्ड ,शहर ए अदब सम्मान (गाज़ियाबाद), साहित्य जवाहर अवार्ड(लखनऊ) परवीन शाकीर अवार्ड (दिल्ली) और एतराफ ए कमाल (कराची)! काफी लम्बे अरसे तक डॉ. नसीम निकहत राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) में सब-एडिटर रही मगर फिलहाल अपनी सेहत की नाराज़गी के चलते वे घर से ही लिखने-पढ़ने का काम कर रही है!

हरदिल अज़ीज़ शाइर मुनव्वर राना कहते है कि डॉ. नसीम निकहत उन दो-चार शाइरात में से एक अहम् नाम है जो सही मायने में शाइरा कहलवाने की हक़दार है जिस तरह पाकिस्तान में परवीन शाकीर शाइरात का हवाला है उसी तरह डॉ .नसीम निकहत हमारे मुल्क की परवीन शाकीर है !

डॉ. नसीम निकहत का बात कहने का सलीक़ा ,उनका मुख्तलिफ़ लहजा उन्हें ऐसे मुकाम पे काबिज़ किये हुए है जहाँ फिलहाल तो कोई और उनके आस-पास भी नज़र नहीं आता ! परम्पराओं की चिलमन में से न जाने कितनी नशिस्तें उन्होंने सुनी होंगी अपने आप से कितना मशक किया होगा तब जाके कहीं ये हुनर आया होगा कि किसी जवाब में से फिर से सवाल निकालकर उसे ग़ज़ल बना दिया जाय!

नफरत से नफरत बढती है प्यार से प्यार पनपता है
आग लागाने वालों को ये बात मगर समझाए कौन

और उनके इस शे'र को तो बस महसूस किया जा सकता है

अम्मा थक कर आँखें मूंदे मिट्टी ओढ़े सोती है
घर आने में देर अगर हो, उसकी तरह घबराए कौन

डॉ. नसीम निकहत के पास अगर शे'र कहने के लिए बेहतरीन ख़याल है तो उसके साथ - साथ उनका लफ़्ज़ों का इन्तिख़ाब भी लाजवाब है ! अपने एहसास को लफ़्ज़ से मिलाने में वे ऐसी मीनाकारी करती है कि शे'र फिर अपना रस्ता ख़ुद बनाता चला जाता है उसे फिर न तो कोई अदाकारी की सवारी चाहिए और न ही उसे तरन्नुम की उंगली पकड़ने की ज़रूरत महसूस होती है ! उनके कुछ अशआर तो ऐसा ही कुछ कहते है :-

ज़रा सी शौहरत पे है ये आलम,चराग़ सूरज पे हँस रहे हैं
जो खानदानी हैं जानते हैं तमीज़ क्या है शऊर क्या है

हद से बढ़ने लगे कमज़र्फ तो चुप क्या रहना
बुज़दिली लगने लगे ऐसी शराफ़त भी न हो

*****

सब फ़र्ज़ हमारे हैं, सब क़र्ज़ हमारे हैं
मौजों से लड़ेंगे हम ,तुम पार उतर जाना
मासूम परिंदों को आता ही नहीं "निकहत"
आग़ाज़ से से घबराना ,अंजाम से डर जाना

पिछले दिनों दो बार अजमेर और जयपुर में डॉ. नसीम निकहत साहिबा को रु-ब-रु सुनने का मौक़ा मिला अब उनकी शाइरी की तस्वीर में एक सूफियाना रंग भी दिखाई देने लगा है ! वे ख़ुद भी कहती है की मेरा मिज़ाज अब साधु का सा हो गया है और जब कोई क़लमकार अपना मिज़ाज ही सूफियाना कर ले तो उसे महबूब की चौखट भी ख़ुदा का दर नज़र आती है ! ज़िन्दगी की हक़ीक़त से जब सही मायने में त-आर्रुफ़ हो जाए तो शे'र अपनी शक्ल इस तरह अख्तियार करते है :---

डोर से रिश्तों की वो ऐसा बँधा रह जाएगा
मैं बिछड़ जाउंगी और वो देखता रह जाएगा
हम चले जायेंगे रौनक़ कम नहीं होगी मगर
ज़िन्दगी का हर तरफ़ मेला लगा रह जाएगा
इन चराग़ों की तरह आँखें मेरी बुझ जाएगी
शब् गुज़र जाएगी दरवाज़ा खुला रह जाएगा

डॉ. नसीम निकहत के अभी तक के अदबी सफ़र पे रौशनी डालना महज़ रौशनी को रौशनी दिखाना है ! डॉ. नसीम निकहत शाइरी की वो मुकमल किताब है जिसे पढ़कर कारी (पाठक) ग़ज़ल के हर तेवर से मुख़ातिब हो सकता है ! इसमें उस बच्ची को भी पढ़ा जा सकता है जिसे इस दुनिया में आने से पहले ही क़त्ल कर दिया गया ,इसमें इश्क़ में खोई महबूबा का जुनून है , घर नाम की क़फ़स में क़ैद कर दी गई औरत के अन्दर की टीस भी इसके पन्नों में गड़ी है और इसके साथ- साथ इस किताब में वो नसीहतें भी है जिन पर अमल करके ज़िन्दगी को ज़िन्दगी की तरह जिया जा सकता है ! जहाँ तक हिन्दुस्तान की शाइरात का सवाल है अगर नसीम निकहत को उसमे से घटा के देखें तो फिर पीछे कुछ नज़र नहीं आता !अदब के लिए ये कोई अच्छे संकेत हरगिज़ नहीं है हमारे मुल्क की शाइरात को थोड़ा संजीदा होना पडेगा तभी शाइरी का वक़ार भी सलामत रहेगा और शाइरात का भी !

ख़ैर हिन्दुस्तानी अदब को ये फ़ख्र तो नसीब है कि हमारे पास नसीम निकहत है ! आख़िर में डॉ. नसीम निकहत की इसी दुआ के साथ ...
ख़ुदा हाफीज़

ग़ालिब का रंग मीर का लहजा मुझे भी दे
लफ़्ज़ों से खेलने का सलीक़ा मुझे भी दे
सजदों को मेरे फिर तेरी चौखट नसीब हो
मंज़िल तलक पहुँचने का रस्ता मुझे भी दे

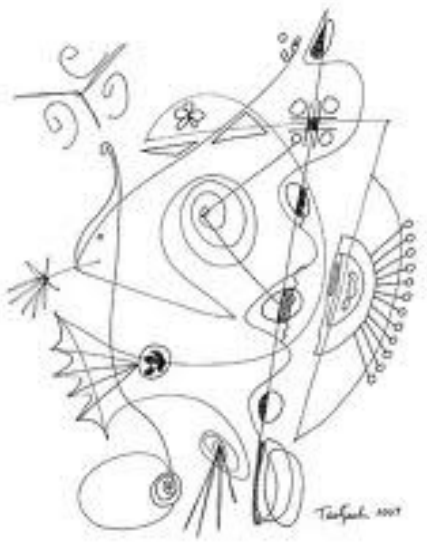

***

मेरे जज़्बात को ही देख, क्या हिंदू क्या मुसलमां
ईसा हैं हम मिल गले, क्या अवध क्या करबला !
- पंकज त्रिवेदी

राष्ट्रीय एकता और अखंडितता में हिन्दी का महत्त्व

भारत एक बहुभाषी और बहुधर्मीय देश है जिसमें भिन्न जाति, धर्म, पंथ और सम्प्रदाय के लोग निवास करते है| प्रयेक प्रांत की अपनी मातृभाषा, लोकबोली और स्वतन्त्र लिपि है| जैसे गुजरात की गुजराती और मध्यप्रदेश की हिन्दी| इन विभिन्न भाषा को अपनाने वालों की अनेकता में एकता की भावना निर्माण करना अत्यंत कठिन कार्य है परन्तु एक भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने के बाद यह प्रश्न हल हो सकता है|

हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों के कवि-लेखक-साहित्यकारों ने विभिन्न भाषा में जो साहित्य की रचना की है, वे प्राय: एक जैसे भावों से ओतप्रोत है| मध्यकाल में जब रामानंदजी ने भक्ति आंदोलन का उत्तरी भारत में सूत्रपात किया तो उत्तर में जहाँ महात्मा कबीरदास, ब्रज भाषा के वाल्मीकि सूरदास, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचंद्रजी के अनन्य उपासक भक्त शिरोमणी तुलसीदास, विरह की शहजादी मीराँबाई और विद्यापति,कोकिल की भक्ति इसमें निर्मल स्वर लहरियाँ गूँजा रही थी| संत तुकाराम, नामदेव और गुरु नानक ने वही प्रेम और भक्ति का सन्देश सुनाया था| यही नहीं सुदूर दक्षिण में भी संतों की वाणियों में भी स्वर गूँज रहा था| यदि इस काल की सभी रचनाओं को देवनागरी लिपिमें लिपिबद्ध करके देखा जाय तो भारत की राष्ट्रीय एकता और अखंडितता का सहज ही परिचय मिल जाएगा|

भारतीय समाज में संतो का योगदान अपना विशेष स्थान रखता है| समाज सुधार की भावना से जीन संतो ने अपनी सेवाएँ सद् ग्रंथो के माध्यम से अर्पित की है वे सभी हिन्दी में ही लिखे ग्रन्थ है| लोकनायक महात्मा तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' केवल किसी एक प्रांत या किसी एक देश को सामने रखकर नहीं अपितु समस्त विश्व और समग्र मानव जाती के हित को ध्यान में रखकर लिखा गया है| उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की जो भावना जिस हिन्दी भाषा में व्यक्त हुई है वह निश्चित ही राष्ट्रीय-एकता के लिए पोषक और सहायक सिद्ध हो सकती है|

हिन्दी भाषा में रही वैज्ञानिकता, सुलभता, सुगमता, गुण संम्पन्नता, परिपूर्णता, श्रेष्ठता, भव्य सांस्कृतिक विरासत, पवित्रता, यथार्तता, ध्वन्यात्मकता, अभिव्यक्तिकरण की महान क्षमता और सशक्तता इत्यादि विशेषताओं के करण यह देश को एक सूत्र में बाँध सकने में समर्थ है| जब हम समूचे रूप में हिन्दी भाषा को व्यवहार में लायेंगे तभी भारतीय भूखंड एकता का शंखनाद करेगा| राष्ट्रीय एकता में राष्ट्र और एकता दोनों सन्निहित है| राष्ट्र में एकता और अखण्डता बनाये रखना किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र के लिए आवश्यक है| राष्ट्रीय एकता में बाधा उत्पन्न करनेवाले कई कारणों में से भाषा समस्या भी एक प्रमुख करण हो सकता है| कोई भी भाषा समस्या विवाद और संघर्ष को जन्म देती है| जहाँ संघर्ष निर्माण होता है वहाँ एकता भी भंग

घनिष्टतम सम्बंध घनिष्टतम और अन्योन्याश्रित होता है| अतः देश में राष्ट्रीय एकता को प्रस्थापित करने के लिए भाषा समस्या का निदान करना जरूरी है| इसलिए राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए एक भाषा को स्वीकार करना चाहिए और एस दृष्टि से हिन्दी ही सशक्त और उपयुक्त प्रतीत होती है| राष्ट्रीय एकता की भावना को अधिक मजबूत बनाने की क्षमता हिन्दी भाषा में जितनी मात्रा में पायी जाती है, उतनी अन्य किसी भाषा में पाई नहीं जाती|

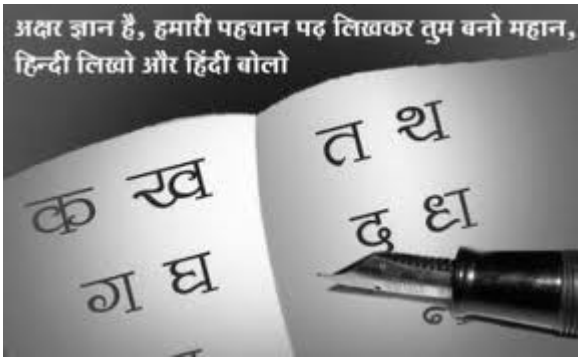

राष्ट्रीय एकता को सम्पादित करने के लिए हिन्दी को राष्टभाषा के पद पर आसीन करने के हेतु सिर्फ हिन्दी भाषियों ने ही प्रयत्न नहीं किये अपितु हिंदीतर प्रदेशों के महान देशभक्तों ने भी उसे भरपूर पोषण दिया है – सर सयाजी राब गायकवाड, राजाराम मोहनराय, केशवचंद्र सेन, विश्ववंद्य राष्ट्रनायक महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक इन देशभक्तों में मुख्य थे| केशवचंद्र सेन ने कह दिया था कि- यदि हिन्दी को भारत वर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज में ही राष्ट्रीय एकता सम्पन्न हो सकती है| हिन्दी सबसे अधिक बोली और समजी जानेवाली भाषा है| वह संतो की भाषा है, आत्मा की भाषा है, ऐसी भाषा तोड़ नहीं जोड़ सकती है|

हिन्दी की लंबी यात्रा में किस किसने कितना योगदान दिया है उसका विस्तृत लेखन कार्य करना अभीष्ट नहीं हैं| हिन्दी अपनी विशालता के करण आज अंतरराष्ट्रीय मंच पर आसीन हो गई है| बड़े बड़े विश्व हिन्दी सम्मलेन हो चुके है और विश्व के पचास से अधिक विश्व-विद्यालयों में हिन्दी पढाई जाती है|

हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि स्वराज मिलने के छह दशक के बाद भी हम यह नहीं समझ पाए कि हिन्दी किसी भी धर्म या जाती की भाषा नहीं, वह समस्त देश की भावना है | जिस प्रकार आदित्य बिना भेदभाव से सबको प्रकाश, उष्मा और ऊर्जा प्रदान करता है, मेघ वर्षा करता है उसी प्रकार हिन्दी सबको प्रेम प्रदान करती है और सबके हित की कामना करती है |

अंत में इतना ही कहूँगा –

हिन्दी है सर्वोत्तम भाषा
गाओ जिसके गुणगान |
हिन्दी के प्रति अर्पित होना
देश भक्ति की सही पहचान ||
हिन्दी मधुर भाषा है
देश को जोडनेवाली |
प्रांतीयता के भेदभाव को
सहज मिटानेवाली ||

जय जय जय हिन्दी भाषा
एक सूत्र में बंधे धरा यह
है भारत की तू आशा|
जय हिन्दी|

***

एक मुसाफिर की डायरी से...

बालकनी में ताज़ा खिलें फूलों की भीनी भीनी खुशबू उसे पूरा का पूरा कब भिगो गयी राजा को पता ही न लगा| राजा को यह भी पता न लगा कब सुबह की नर्म मुलायम गुलाबी किरणों ने चुपके से आ के रात के अँधेरे को, व ओस की बूंदों को सोखना शुरू कर दिया था| पक्षियों की चहचह और फूलों की खुशबू से चारों तरफ एक उत्सव सा लगाने लगा था| यही सुबह तो रोज होती थी| सूरज तो रोज खिलता था| हवा रोज ही तो चलती थी| फूल तो रोज ही खिलते थे| पर राजा क्यों नहीं देख पाता था| क्यों नहीं इन खुश्बूओं को अपने नथूनों में भर पाता था| क्यों नहीं इन किरणों को आँखों से पीने की ख्वाहिश होती थी| सना का जादू भी तो न जाने कब धीरे धीरे चुपके-चुपके उसके वजूद को घेरने लगा था| सना का जादू ही तो है जो हर चीज को हर बात को हर एहसास को यहाँ तक की राजा को पूरा का पूरा बदल दे रहा है| अगर नहीं तो फिर यह सुबह पहले की तरह उसस क्यों नहीं लगती| उसे क्यों नहीं लगता कि यह वही तो सूरज है जो रोज रोज उगा करता है| यह वही तो गुलाब व गेंदा हैं जो उसी तरह गुलाबी व पीले रंग में उगते हैं| पर अब क्यों गुलाब और ज्यादा गुलाबी, गेंदा और ज्यादा पीला दिखाई पडता है| पर अब क्यों उसे हर चीज नयी नयी लगती है| ऑफिस जाना क्यों बोझ नहीं लगता| एक उत्सव में शामिल होना लगता है| राजा यह सब जितना सोचता उतना ही अपने आप में मुस्कुराता| पर यह भी जानता कि इस मुस्कराहट के पीछे एक ऐसा फैसला है जिसे वह अभी तक मुल्तवी किए है| एक ऐसा फैसला जिसमें उसका पूरा का पूरा वजूद सना है जो उसकी सारी तपस्या को भंग कर सकती है|

फैसला जिसमें उसका पूरा का पूरा वजूद सना है जो उसकी सारी तपस्या को भंग कर सकती है|

राजा जब कभी भी अपने आपको अनिर्णय की स्थिति में पाता तो वह अपने आपको कमरे में अकेले बंद कर लेता फिर एक दो तीन चार दिनों तक न कही आना न कहीं जाना न कोई फोन न किसी से बातचीत बस| राजा रहता और रहता एक निपट-निचाट अकेलापन| आता|

आज भी उसने अचानक दो दिन की छुट्टी और रविवार को लेकर तीन दिन तक कमरे में ही बंद रहने का फैसला कर लिया था|

इस दौरान उसे महज़ सोचना था और सोचना था | सना के बारे में अपने बारे में, सना के भविष्य के बारे में, अपने भविष्य के बारे में | अपने उन सिद्धांतों के बारे में जो उसके सीने से कवच-कुंडल से चिपके पड़े थे | जिन्हें वह

राजा सोच रहा था कि यदि सना के प्रति ये लगाव मुहब्बत है तो फिज़ां के प्रति क्या था ? और अगर फिज़ां के प्रति प्रेम था तो सना की तरफ आकर्षित होना क्या है? यदि फिज़ां के प्रति उस लडकपन का आकर्षण मानें तो इस उम्र में कम उम्र के प्रति इतना मोह क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं यह अपने एकाकीपन को भरने की कोशिश हैं | या रूप का आकर्षण | अगर रूप को कारण माने तो एक से एक ख़ूबसूरत लडकियां या औरतों से मुलाकातें होती रही है | बातें होती रही है, वे क्यों नहीं अपने आकर्षण में बाँध पायी |

जिसमें वह सिर्फ सोचता सोचता और सोचता| उस समस्या के हर पहलू पे सुबह से शाम तक शाम से सुबह तक कि कोई निर्णय नहीं आ जाता| और अक्सर ऐसा होता कि अचानक या किसी मंथन से उस समस्या का हल निकल ही

निकाल फेंकना चाह के भी नहीं निकाल पा रहा था | वे तो उसके साथ ही जुड़ें हैं और शायद मरने के बाद तक जुड़े रहेंगे | यही सिद्धांत ही तो रहे हैं जिनको ढोते ढोते वह आज टूट जाने की स्थिति में आ चुका है | न जाने कितनी बार टूटा भी है, पर हर बार पता नहीं किस अंदरूनी ताकत ने उसे उबारा है वह खुद भी नहीं जानता | पर नींव की कमजोरी तो उसे ही पता है |

कईं बार तो भावनाओं के तूफां आये पर हर बार वह अपने आप को बचा लेता | हालांकि एक तूफां के अलावा तो बाकी छूट पुट बारिश की ही जड़ में आते हैं | पर इस बार तो वह लगता है कि टूट ही जाएगा | पर टूटना फितरत में नहीं |

आदाबे मुहब्बत से संवर क्यों नहीं जाते
खुश्बू सी फिजाओं में बिखर क्यों नहीं जाते

सना| सलोनी नायक| जिसे वह स.ना. लिखती है| सना कहना पसंद करती हैं| सना| सना खुश्बू ही तो है जो चुपके चुपके से चन्दन की भीनी भीनी महक के साथ| उसके मन में फ़ैल चुकी है| पर यह खुश्बू उसके वजूद में बिखर के उसे ही पूरा का पूरा बिखेर देना चाहती है|

राजा ने जोर से सांस ली| वह सना को सूंघ लेना चाहता था| यादों में ही पूरा का पूरा| पर सना तो खुश्बू की तरह उड़ रही थी| अब महक दरवाजों और खिडकियों से बह बह के दूर और दूर जा रही थी| राजा खुश्बू के लिए खिडकी तक आया तब खुश्बू उड़ के दूर कहीं आसमान में ढेर सारी खुश्बूओं में घुलमिल गयी थी, जिसमें यह पहचानना मुश्किल था, इसमे कौन सी खुश्बू सना की है कि कौन सी फिजां की है या कि दूसरी चंपा या चमेली की| पर अब इस वक्त तो वह फिजां की खुश्बू ही ढूंढ रहा था|

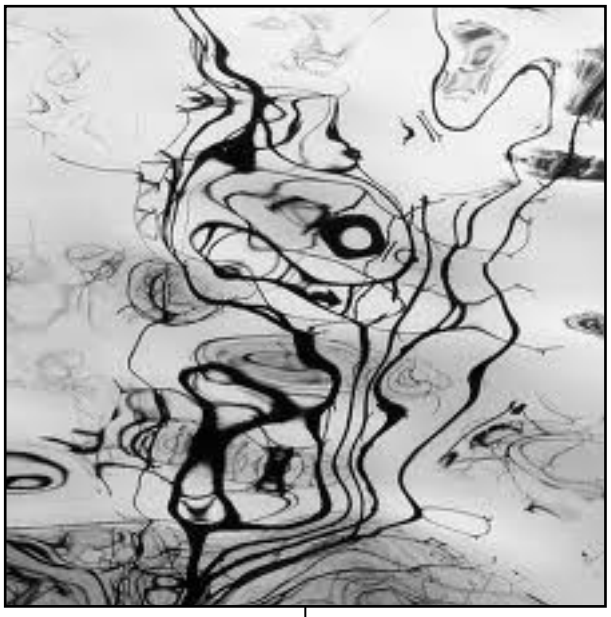

जो फिजां के गुलाब से गालों से महमह करके महकती थी| जो इस बुझाते हुए अलाव की राख में न जाने कितनी दूर दबे अंगारों को कुरेद रहे थे| जिन्हें वह पता नहीं कब दफ़न कर आया है|

शायद उसे दिन जिस दिन फिजां से दूर हुआ था| तब जब उसने अपने व फिजा के घर के रस्ते में पडने वाले कब्रिस्तान में ही उन यादों को दबा आया था| और उस दिन के बाद आजतक उसने कभी भी मुहब्बत की घाटी में दूबारा न झाँका था| उसे विश्वास था कि दुनिया में सिर्फ एक फिजा थी जो उसके लिए थी और अब कोई दूसरी फिजा नहीं हो सकती| हुआ भी यही| इतने सालों तक वह अपने आप में मगन रहता, सुबह से शाम तक कभी पल दो पल की फुरसत भी मिली तो 'दुनिया में और भी गम है ज़माने में, मुहब्बत के सिवाय' –यह सोच किन्हीं और कामों में अपने आप को उलझाता रहा|

पर वह तो हर वक्त फिजा के आबनूसी गेसूओं में ही उलझा रहता था| जब भी रात होती तो लगता यह चाँद फिजां के काली घनी अलकावलियों में ही तो खिला है| जो रातभर यादों की भीनी सी चांदनी बरसाता रहता और राजा उसी में धीरेधीरे भीगता रहता| मन से दिल में दिल से और भीतर और भीतर तक| फिर न जाने कब यह रात चुपके चुपके कहीं हवाओं में और फिजाओं में खो जाती और फिर चाँद सूरज बन हल्की हल्की सी तपन के साथ उसके तन व मन से यादों के मोटी चुन के फिर दूसरी यादों के झोंको से सेंकती रहती| राहा घर में हो या ऑफिस में, राजा बस में हो या पैदल| राजा यहाँ हो कि वहाँ| जहाँ जहाँ भी जाता फिजां संग संग डोलती हंसती मुस्कुराती| वह राजा के साथ एक साये सी लगी रहती| कभी कभी तो राजा अपने आप से भी झुंझला जाता| फिर इन यादों को मय में डुबो देना चाहा पर यह भी न हो पाया|

सिगारेट का एक लंबा कश खींच के ढेर सा धुआं उगल दिया राजा ने| कमरे में अब गुलाब-गेंदा की महल में धुएं की तीखी महक भर गयी|

फिजां गुलाब सी गुलाबी व शोख तो सना गेंदा सी खिली खिली सरसों सी पीली| और राजा धुआं| चाहता तो वह गुलाब की महक से अपने को भर सकता था| पर उसी ने तो नहीं चाहा| और... आज जब एकबार फिर किसी फूल ने उसके जीवन को महकाने की हौले से कोशिश की तो वह क्यों उदासीन सा है| यह उसे समझ में ही नहीं आ रहा|

अब वह उस अजीब सी महक में से सिर्फ गुलाब को अपने नथूनों में भर रहा था| और फिजां गज़ल बन गयी| हाँ, फिजां गुलाब ही तो थी| जिसका एक एक अंग गुलाबी|एक एक

अदा शराबी| वह जब हंसती तो मुगे से होंठ खिल जाते| जिसे देख के ही तो उसने ज़िंदगी का पहला शेर कहा था|

"सर्द मौसम से सुलगते से होंठ,
कुदरत का करिश्मा ही हैं ये होंठ।

तब ज्यादा से ज्यादा चुप रहने व कम से कम बोलने वाले राजा को यह नहीं पता था कि शेर के काफिये कहाँ और कैसे तंग होते है या झोल खा जाते हैं| पर अनायास ही उसके होंठों से निकली ये चार लाईने ही थी जिसने उसे गज़ल व शेरों व शायरी की दुनिया का रास्ता दिखा दिया था| फिर तब का दिन है और आज का राजा सिर्फ शब्दों में जीने लगा था|

शब्द-शब्द-शब्द और शब्द ही तो बच रहे हैं| उसके पास खैर...

हँसती खिलखिलाती गुनगुनाती फिजां जब भी घर आती| घर भर की फिजा बदल जाती| माँ-पिताजी व बहन सभी के साथ हंसती ठिठोली करती| सभी को किसी न किसी बात से किसी न किसी चुटकुले से या चुटकुले सी बात से हंसाती रहती, गुदगुदाती रहती| बस सबसे कम बोलती तो वह राजा ही था| एक तो राजा के कम बोलने की आदत दूसरे फिजां के घर का माहौल भी जो मर्दों से कम से कम बोलने व मतलब रखने की हिदायत देता रहता था| पर इसके बावजूद वह अक्सर राजा को छेडती और कहती| राजा तो बाजा है| जिसके सारे बैंड व स्विच खराब हैं जो कभी कभी बजता है| और जब बजता है तो बस घर्र घर्र करता है| यह कह के वह खिल से हंस देती| राजा भी बूरा न मानके बस मुस्कुरा के रह जाता|

फिजां आयी हो और राजा घर में हैं तो वह किसी न किसी बहाने उसे देखनी की कोशिश में रहता| यह बात धीरेधीरे पता नहीं कैसे फिजां को महसूस होने लगी थीं|

एक दिन जब उसने उसे चोरी से देखते देख लिया था तो मुँह चिढ़ाकर चली गयी थी| तब राजा शर्मा गया था| लेकिन उस दिन के बाद से यह लुकाछिपी का खेल अक्सर होने लगा था|

एक दिन राजा ने कागज़ की पुरजी में दो लाईने लिख के उसकी तरफ सरका दिया जिसे फिजां ने चुपके से उठा लिया|

मूंगा कहे गुलाब कहें जाम से ये होंठ
माशूक की पलकों पे सजाते हैं ये होंठ

दूसरे दिन फिजां ने भी के पुरजी उसकी मेज पे उछाली|

होंठों को न अपने सिल के रखिये
राज़ अपने दिल का खुल के कहिये

उस दिन के बाद न जाने कितनी पुरजियाँ ली और दी जाने लगी|

फिजां अब उसके लिए गज़ल बन गयी थी| जिसे वह हर वक्त गुनगुनाता रहना चाहता था| अब दिन ख़ूबसूरत नदी सा बह रहे थे| जिसमे राजा और फिज़ा छपक छइयां करते| कभी फिज़ां फूल बन जाती जिसकी खुशबू को राजा रेशा रेशा पी लेना चाहता| कभी-कभी फिज़ां ख़ूबसूरत झरने सा बहाने लगती जिसकी धवल धार में राजा अठखेलियाँ करता|

तो कभी राजा बादल बन जाता फिज़ां के लिए और फिज़ां बादलों में उडती रहती|
बया सी| बया जो एक सुंदर सा घोंसला बनाने का सपना देखा करती जिसमें बस वह रहती और राजा| राजा भी ऐसा ही कुछ सोचता और खुश रहता|
मगर बयाँ का घोंसला बना कब?
राजा और फिज़ा| फिज़ां और राजा| बस दो ही थे एक दूसरे की दुनिया में| बाकी तो दुनिया एक सपना थी|
फिज़ां खुश्बू थी रूहानी खुश्बू जिसमें राजा डूबता-उतरता तो कभी उड़ता दूर दूर आसमाने के भी पार| जहाँ सारा जहाँ खत्म होता हैं| रहता है सिर्फ एक ख्वाब महल| जिस ख्वाब महल में सिर्फ रहते राजा और फिज़ां| और रहती सिर्फ मुहब्बत मुहब्बत सिर्फ मुहब्बत|
और यह ख्वाब महल हकीकत का जामा पहन पाता इसके पहले ही| फिज़ां ने कहा|
'राजा, घर वाले मेरे को जल्दी ही रुखसत देना चाहते हैं|
"क्यों?
"मम्मी-डैडी को लगता है कि वे अपनी जिम्मेदारी जल्दी से जल्दी पूरी कर दें| एक रिश्ता आया भी हैं| लिहाजा तुम जितनी जल्दी हो सके शादी का फैसला करो|
"पर अभी तो मैंने इस बारे में सोचा ही नहीं है| वैसे भी जब तक अपने पैरों पे नहीं खड़ा हो जाता कुछ सोच नहीं सकता|
"पर मेरे घर वाले अब रुकने को तैयार नहीं है|"
"तुम्हारा क्या ख्याल है? अगर तुम मेरे पैरों पे खड़े होने तक रुक सकती हो तो ठीक है| वर्ना तुम्हारी मर्जी |
फिज़ां काफी देर चुप रहने के बाद बोली; मेरे लिये यह काफी मुश्किल है| अगर अभी कुछ फैसला करो तो घर वालों से कह सुन के कुछ किया जा सकता है|
पर राजा इतनी जल्दी तैयार न था| शादि के लिये|
कई बार फिज़ा के जोर देने पर भी राजा अपने फैसले पर अडिग रहा|
इसके बाद बस एक दिन फिज़ां ने ही सूचना दी कि घर वालों ने उसकी शादी की डेट तय कर दी है|
और एक दिन फिज़ां किसी और के बंधन में बांध गयी|
और राजा ने अपनी मुहब्बत को अपने सीने में ही दफ़न कर लिया|
न तो राजा रोया न ही गम के पैमाने में डूबा उतराया| बस अब राजा रहता और रहता उसका लेखन|
वह खबरों की दुनिया में रहता| धीरे धीरे वह एक सफल और सफल पत्रकार व लेखक बनता गया| उसका नाम खबरों की दुनिया में छपता पर वह अपने आपको गुमनामी के अँधेरे में ही डुबाये रहता| यहाँ तक कि, सावन भादों आते बरस के चले जाते, जेठ बैसाख आते तपाके चले जाते, कोई भी रुत आये या जाये,
राजा के लिए बसतेरी साँसों की महक फूलों में लुत्फ़ हर रुत में तेरे प्यार का है|
अब बस राजा रहता और रहती फिज़ां की याद| और....
धीरे धीरे दिन बीते, महिने बीते, साल बीते| और बीते दो दशक!
राजा ज़िंदगी की राह में अकेला ही चलता रहा| फिज़ां की यादों को लिये लिये|
धीरे धीरे फिज़ां की यादों के साथ वह अपनी ज़िंदगी आराम से काट रहा था|
तभी| मिली सना | ऑफिस की एक कम उम्र अल्हड सी बाला|
जिसे वह एक छोटी सी बच्ची समझता |थी भी वह बच्ची| वही बच्ची धीरे धीरे हँसते बोलते न जाने कब बेतकल्लुफ़ होने लगी|
और यही बेतकल्लुफ़ी इस हद तक परवान चढी कि कब वह उसकी यादों में कैद हो गयी| फिर कब वह उसकी धडकनों में कैद हुयी| फिर कब उसकी सांस सांस में समा गयी राजा को कुछ पता ही न लगा| बस जैसे एक फूल खिला हो और उसकी भीनी भीनी खुश्बू नासा पुटों में अपने आप भर जाती है|

सांसो के साथ साथ| बस उसी तरह सना भी राजा की रातों में सपने की तरह आने लगी|
कई बार राजाने इन खयालों से पीछा छुड़ाना चाह पर बात न बनती| हर बार उसकी मासूम आँखें आँखों के सामने आ जाती तो कभी उसका मासूम जिद्दीपन याद आ जाता| और वह अकेले में ही मुस्कुरा देता..! राजा अक्सर उससे कह भी देता|

तेरी झील सी आँखों में अजब भोलापन
मेरी जान न लेले तेरा मासूम जिद्दीपन|

और..... वह हंस के कहती यही तो मैं चाहती हूँ| तब राजा आदतन मुस्कुरा के रह जाता| जवाब कुछ ना देता | जिस दिन सना न आती लगता कुछ खो सा गया है| वह रहता तो ऑफिस में पर रोज सा खिलापन न रहता|

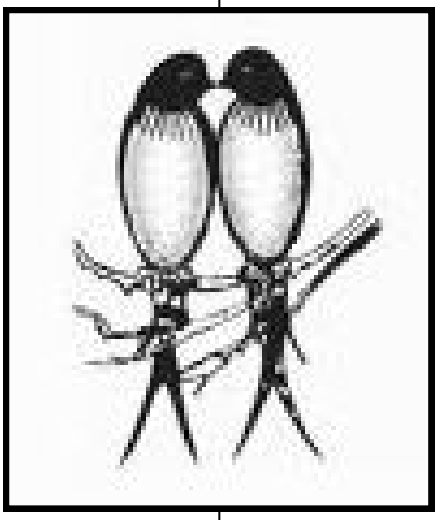

इसे राजा अपनी कमजोरी मानता और मन ही मन इससे उबरने की कोशिश करता| पर हर बार मन व दिल दगा दे जाते| हार के आज राजा ने फैसला लेने की गरज से अपने आपको इस कैद में डाल लिया|
राजा सोच रहा था कि यदि सना के प्रति ये लगाव मुहब्बत है तो फिज़ां के प्रति क्या था ? और अगर फिज़ां के प्रति प्रेम था तो सना की तरफ आकर्षित होना क्या है? यदि फिज़ां के प्रति उस लडकपन का आकर्षण मानें तो इस उम्र में कम उम्र के प्रति इतना मोह क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं यह अपने एकाकीपन को भरने की कोशिश हैं| या रूप का आकर्षण| अगर रूप को कारण माने तो एक से एक ख़ूबसूरत लडकियां या औरतों से मुलाकातें होती रही है| बातें होती रही है, वे क्यों नहीं अपने आकर्षण में बाँध पायी| और अगर कोई देहिक आकर्षण भर है तो वह भी राजा को मंजूर नहीं| किसी को भोग लेना और फिर छोड़ देना राजा का सिद्धांत नहीं|
तो राजा क्या करें| फिज़ां की यादों से बेवफाई करें या सना से मुहब्बत! सना से मुहब्बत करें या फिज़ां से बेवफाई! भले ही फिज़ां उसकी न हो पायी पर उसे तो राजाने अपना माना है| फिर उसकी यादों से भी वह क्यों बेवफाई करें| अगर बेवफाई कर भी ले तो क्या वह अपने आप को फिर माफ कर पायेगा? और फिर अगर यही करना था तो बहुत पहले ही क्यों नहीं किया| इतने सालों तक क्यों तन्हा भटकते रहे|
मान लो किसी वजह से वह सना की दोस्ती को हवा दे भी देता है तो क्या समाज उसे स्वीकार कर पायेगा| क्या वह समाज से लड़ के उसकी हो पायेगी? और अगर नहीं तो क्यों फिर से इस मृगतृष्णा में फंसना|
राजा जितना ही सोचता उतना ही उलझता जाता| पर राजा जिद्द किये बैठा था कि जब तक फैसला नहीं कर लेता कि उसे फिज़ां की यादों के साथ जीना है या फिर सना की दोस्ती क़ुबूल करना है तब तक उसे कमरे से बाहर नहीं निकलना है! राज को कुछ समझ न आया तो जोर से सांस ली और सिगरेट का ढेर सा धुआं बाहर फेंका मानों वह अपने सारे अंतर्द्वंद्व को बाहर फेंक देना चाह रहा हो|
ढेर सा धुआं आसपास फ़ैल गया| राजा ने दो तीन कश और जोर से लिये| फिर एक ही झटके में फैसला किया| मोबाईल से सना का नंबर डिलीट कर दिया|उस खुश्बू में जिसमें कुछ महक फिज़ां की तो कुछ महक सना की सनी थी| और ढेर सारा धुआं था जो राजा के सीने से निकले धुएं में कहीं खो सी गयी थी|
इस उम्मीद में कि शायद...

आग तो बुझ जायेगी बस इक धुआं रह जाएगा|
यह धुआं भी रफ्ता रफ्ता फिर कहाँ रह जाएगा |

***

डॉ. सुधा ओम ढींगरा

आप अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री-विमर्श और स्त्रियों को समाज में समान अधिकार के लिए कितनी जागरूकता ला पाई हैं|

अनीता जी, साहित्य सृजन और सामजिक जागरूकता दो अलग विषय हैं| रचनाकार अपनी रचनाओं में सामजिक विद्रूपताओं, शोषण, महिलाओं की स्थिति का चित्रण कर समाज के सामने उनकी दशा प्रस्तुत करता है और पाठकों को उस मुद्दे पर सोचने के लिए मजबूर करता है| जागरूकता और परिवर्तन तो सामाजिक संस्थाएं एवं सामाजिक प्रणेता ही ला सकते हैं| पाठक अगर किसी रचना को पढ़ कर उस पर गहन चिंतन ही कर लें तो लेखक का लिखा सार्थक हो जाता है| वहीं से जागरूकता और परिवर्तन का बीज पडता है| वैसे लेखक कभी यह सोच कर नहीं लिखता कि यह रचना स्त्री-विमर्श की हैं, समीक्षक और आलोचक ही उसे वर्गों में बाँटते है| यह नहीं कह सकते कि साहित्य क्रांति नहीं लाता| अमरिका में 1852 में Harriet Beecher Stowe ने एक उपन्यास लिखा था| Uncle Tom ' s Cabin और यह उपन्यास गुलाम अश्वेतों के जीवन का सजीव चित्रण करता 1852 में लिखा गया पहला ऐसा उपन्यास था जिसने क्रांति की लहर अश्वेतों में पैदा कर दी थी| इस पुस्तक की अमरिका में उस समय 310,000 प्रतियां बिकी थीं और इससे तीन गुना इंग्लैंड में जो कि उस समय एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी|

इसका प्रभाव यह हुआ कि अमरिका के उत्तरी प्रान्तों में अश्वेतों को गुलाम बनाने के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई और कई प्रश्न चिन्ह लगाए गए| चाहे अमरिका के दक्षिणी भाग ने इसे दबा दिया और 1857 में मेरीलैंड के एक स्वतन्त्र अश्वेत किसान और प्रचारक को उसके घर से पकड़ कर 10 वर्षों के लिए जेल भेज दिया क्योंकि उसने इस उपन्यास में दी गई सामग्री को अश्वेतों में जागृति और प्रेरणा पैदा करने के लिए प्रयोग किया था| अमरिका के दक्षिणी प्रान्तों में अश्वेतों को स्वतंत्रता दिलवाने में इस उपन्यास का बहुत बड़ा हाथ माना जाता है, चाहें वर्षों लग गए अश्वेतों को स्वतंत्रता प्राप्त करने में|

पूरी दुनिया के साहित्य में इस तरह के बहुत से उदाहरण हैं जब साहित्य समय, समाज और जनहित को लेकर लिखा गया और वह

ले आया| हाँ, कुछ महिलाओं के पत्र, ईमेल्स और फोन काल्स जरुर ऐसे आते हैं, जिसमें कहा हुआ होता है कि कहानियाँ हमारा दर्द कहती हैं |

आप पिछले तीस वर्षों से अमरिका में रहकर लेखन कर रही हैं| उस दौर के लेखन में और आज के लेखन में आप क्या अंतर पाती हैं?

अनीता जी, मैं पिछले तीस वर्षों से अमरिका में रह जरूर रही हूँ पर तीस वर्षों का निरंतर लेखन है ये नहीं कह सकती| पिछले बारह-तेरह सालों से निरंतर कार्य चल रहा है| शादी करके जब मैं यहाँ आई तो पत्रकार, कहानीकार, कवयित्री, कलाकार जाने क्या-क्या थी| सबकुछ छूट गया और बस कामकार बन गई| यूनिवर्सिटी में साईकोलोजी पढने लगी| यहाँ की डिग्री लिए बिना इस देश में कुछ नहीं कर सकती थी| सैंट लुईस मिज़ूरी में शादी के बाद आई थी और पता चला कि वहाँ का वाशिंगटन विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग खोलना चाहता है और प्राध्यापक की ज़रूरत है| हिन्दी की पीएँच.डी. काम आई| विभाग खुल गया और पढाने लगी, साथ-साथ अपनी पढाई भी पूरी करने लगी| धोबी, बावर्ची, सफईवाली, हलवाई पता नहीं क्या क्या बन गई| उस समय के अमरीका और आज के अमरिका में बहुत अंतर है| भारतीय कम थे|

मैं पोलियो सरवाईवल हूँ और बचपन में खेल नहीं पाई| अतः ऊर्जा और दर्द कहीं तो निकालना था | बचपन से ही लिखने लगी थी| पहली रचना कौन सी थी, याद नहीं| हाँ, जो पहली कविता दैनिक हिन्दी मिलाप के बाल स्तंभ में छपी, वो थी| 'खो गई'|

भारत और भारतीयों के प्रति स्थानीय लोगों में उदारता कम थी| मैं परिवेश, संस्कृति और भाषा की चुनौतियों में उलझकर रह गई| संवेदनशील हूँ, लगा कि भाषा का प्रचार-प्रसार जरूरी है| वह पहली प्राथमिकता बन गई| अस्मिता का प्रश्न था, बच्चों को भाषा से ही संस्कृति सिखाई जा सकती थी|

अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति के साथ जुड गई और रेडियो प्रोग्राम चलाने लगी, जिसका प्रसारण हिन्दी में होता था| शादी से पहले मैं रेडियो, टीवी और रंगमंच की कलाकार थी, वह अनुभव काम आया| छोटे बच्चों के लिए हिन्दी का स्कूल खोला| कहने का भाव कि भीतर बहुत कुछ सिमटने लगा, पर कलम की नोंक पर नहीं आया| लेखन कुछ समय के लिए थम गया| पाँच एक वर्षों की खामोशी के बाद कलम उठाई| साल में एक या दो कहानियाँ लिखी जातीं वे छापने भेजती| समय लेकर वे भारत में छपतीं| कविताएं यहाँ-वहाँ छप जातीं| धीमी गति से काम चलता रहा| मुझे यहाँ आकर अपने आप को संभालने में बहुत समय लगा| अंतरजाल के आने तक यहाँ हिन्दी का माहौल बन गया था और मेरी जिम्मेदारियां भी कम हो गई थीं| भीतर का लेखक भी उठ खडा हुआ और वर्षों के अनुभवों से भरा पड़ा बंद संदूक खुल गया|

उस समय के लेखन में नास्टेल्जिया अधिक था| विषय सीमित थे| अपनाये हुए देश को स्वीकारा नहीं गया था| दो संस्कृतियों के मूल्यों का टकराव, पूर्व-पश्चिम का अंतर, अंतर्द्वंद्व उस समय की कहानियों का मुख्य विषय था| अब लेखन में परिपक्वता आ गई हैं| विषयों में वृहदता है| एक नई व्याकुलता, बेचैनी तथा के नए अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है जो हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नए साहित्य संसार से समृद्ध करता है|

आज भारत की छवि के साथ-साथ साहित्य लेखन में भी आए परिवर्तन को आप किस रूप में लेती हैं?

साहित्य समाज का दर्पण है तो साहित्य में यह परिवर्तन आना स्वाभाविक है| साहित्य की प्रगति का यह सकारात्मक सन्देश है|वैश्वीकरण और अंतरजाल ने दुनिया को सीमित कर दिया है| भारतीय जीवन दर्शन में पनपती पश्चिमी

सोच अब विदेशों में रचे जा रहे साहित्य के लिए संपादकों, आलोचकों और पाठकों को सोचने और समझने पर मजबूर कर रही हैं| पश्चिमी जीवन मूल्यों और भारतीय जीवन मूल्यों के बीच की खाई बहुत बड़ी थी जो स्वयं भारत में ही कम होती जा रही थी| भारत में जिसे आत्म-प्रदर्शन और आत्म-विज्ञापन की संज्ञा दी जाती है, वह अमरिका में अपने आप को उद्वरित करना कहलाता है| जीवन दर्शन का यह मूलभूत अंतर अमरीकी हिन्दी साहित्य का मूल कथ्य भी हैं| इस कथ्य को अब भारत में नकारा नहीं समझा जा रहा है| भारत में तेज़ी से बदलते मूल्य, जीवन दर्शन और हिन्दी साहित्य, अमरिका की संस्कृति, स्वतन्त्र सोच, उससे पनपे विचार और उन विचारों से रचित साहित्य को स्वीकारने लगा है| पूरे विश्व के रचनाकार अंतरजाल पर एक दूसरे से परिचित हो जाते हैं जो कुछ वर्ष पहले तक सम्भव नहीं था|

अनीता जी, मैं सिर्फ लिखती हूँ| विचार, विधाएँ स्वयं ढूंढ लेते हैं| मेरे लिए साहित्य तो खाना-पीना, ओढना-बिछौना है| ईश्क करती हूँ इससे और प्रेरणा भी इसी से ही मिलती है|

आपने लेखन कब से शुरू किया और सबसे पहली रचना कौन सी थी?

मैं पोलियो सरवाईवल हूँ और बचपन में खेल नहीं पाई| अतः ऊर्जा और दर्द कहीं तो निकालना था| बचपन से ही लिखने लगी थी| पहली रचना कौन सी थी, याद नहीं| हाँ, जो पहली कविता दैनिक हिन्दी मिलाप के बाल स्तंभ में छपी, वो थी| 'खो गई'|

आप कहानी, कविता और लेख सभी विधाओं में लिखती हैं और सभी विधाओं पर सहज रूप से आपकी बहुत अच्छी पकड़ है| आपको इसकी प्रेरणा कहाँ से मिलती है?

अनीता जी, मैं सिर्फ लिखती हूँ| विचार, विधाएँ स्वयं ढूंढ लेते हैं| मेरे लिए साहित्य तो खाना-पीना, ओढना-बिछौना है| ईश्क करती हूँ इससे और प्रेरणा भी इसी से ही मिलती है|

आपकी राय में आज न्यू मीडिया के युग में साहित्यकार को अंतरजाल और वेब दुनिया से कितना जुडना चाहिए?

उतना ही जिससे उसकी सृजनात्मकता प्रभावित न हों|

आप 'हिन्दी-चेतना' की संपादिका है, साहित्यकार और पत्रकार दोनों हैं, आपकी नज़रों में हिन्दी साहित्य का भविष्य क्या होगा?

मैं बहुत सकारात्मक सोच की हूँ| जो भाषा चीन की भाषा मैंडरिन को भी पीछे छोड़ रही है, उसके साहित्य का भविष्य बहुत उज्जवल है| अंतरजाल पर वेब पत्रिकाओं, इ-पत्रिकाओं, चिठ्ठे, इ-बुक्स का प्रसार और बढ़ जाएगा| विश्व के कोने-कोने से पाठक इसके साथ जुडेंगे| विश्व की विभिन्न भाषाओँ में हिन्दी साहित्य का अनुवाद होगा जो इसे वृहद फलक देगा| मुद्रित पत्रिकाओं और पुस्तकों को भी अंतरजाल पर बड़ा बाज़ार मिलेगा| मेरी नज़रों में हिन्दी साहित्य का भविष् बहुत सुंदर और संतोषप्रद है|

पत्रिका का संपादन और साहित्य-लेखन में आप किस कार्य को ज्यादा चुनौतीपूर्ण मानती हैं?

अनीता जी, दोनों की अपनी प्रतिबद्धताएं है| लेखन विचारों, विषय और मूड पर निर्भर करता है| संपादन समय की निर्धारित सीमा में कैद रहता है| मैं दोनों का आनंद लेती हूँ, इसलिए चुनौतीपूर्ण नहीं मानती|

भारत में लोग अंग्रेजी के तरफ भाग रहे हैं, इसके विपरीत आप अमरिका में हिन्दी के

प्रचार-प्रसार का कार्य वर्षों से कर रही हैं, दोनों देशों में हिन्दी भाषा के भविष्य के बारे में आप क्या कहना चाहेंगी?

देखें, मैं पहले भी कह चुकी हूँ, बहुत आशावान हूँ| हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, बेशक इस समय अंग्रेजी उसे प्रभावित कर रही है पर हिन्दी का कुछ बिगाड़ नहीं सकती| इतिहास साक्षी है कि हर देश, हर काल में समय का चक्र कभी भाषा और कभी संस्कृति को प्रभावित करता रहा है| (हँसते हुए) लगता है पश्चिम से हिन्दी भारत लानी पड़ेगी, तब भारत वासी चेतेंगे ! जिस तेज़ी से पश्चिमी संस्कृति अपना रहे हैं, हिन्दी भी उसी गति से अपनाएंगे|

भारत में महिला साहित्यकार और अमरिका में बसी महिला साहित्यकारों के लेखन में क्या कुछ अंतर पाती है आप, या दोनों आपकी नज़रों में समान है?

महिलाएं पूरी दुनिया में एक समान है| अंतर परिवेश और सामाजिक सरोकारों का है| भारत में जिस स्त्री-विमर्श की बात होती हैं, अमरीका में बसी महिला साहित्यकारों का लेखन उससे आगे शुरू होता है| स्वतन्त्र महिला के शोषण, चिंतन, देह की आझादी के बाद की चुनौतियां, विदेशी समाज के सरोकार, विद्रूपताओं, विसंगतियों को चित्रित करता, प्रवासी भारतीयों की मानसिकता को उकेरता, दो संस्कृतियों के टकराव में टूटते जीवन मूल्यों, रिश्तों की महीनता को बुनता, प्रवासवास के अकेलेपन से जूझता संवेदनशील लेखन हैं|

विदेशो में हो रहे कहानी लेखन के बारे में आपका दृष्टिकोण क्या हैं? क्या यह कहानी लेखन भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के सामंजस्य और टकराव दोनों परिस्थितियों को सही मायने में चित्रित करता हैं?

अनीता जी, विदेशों में लिखी जा रहीं कहानियाँ संस्कृतियों के टकराव से पैदा हुई परिस्थियों से कहीं आगे निकल चुकी हैं| यहाँ की कहानियों में बाजारवाद, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद और देहवाद के साथ साथ यहाँ के जीवन की व्याकुलता, बेचैनी तथा एक ऐसे अस्तित्वबोध व आत्मबोध का परिचय भी मिलता है, जो भारत के लिए नया हैं|

साहित्य सर्जन के लिए प्रवासी शब्द के इस्तेमाल से आप कितनी सहमत है?

देश से बाहर रहते हैं, प्रवासी तो हम हैं पर हमारे लेखन को प्रवासी न कहें| वह बात चुभती हैं|

लेखन के साथ-साथ आप अमरिका में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए कवि-सम्मलेन और नाटकों का भी आयोजन समय-समय पर करती रहती हैं, इतनी ऊर्जा कहाँ से पाती हैं आप?

मुझे स्वयं नहीं पता चलता कैसे सब कुछ हो जाता है| मेरे ख्याल से सकारात्मक सोच और हिन्दी के लिए कुछ करने की चाह सबकुछ करवा देती है|

हिन्दी साहित्य में आपको किसका लेखन प्रभावित करता है?

सच कहूँ, अभी तक मैं एक विद्यार्थी हूँ और नए पुराने बहुत लेखकों से सीखती हूँ और प्रभावित रहती हूँ|

(डॉ. सुधा ओम ढींगरा 'नव्या'पत्रिका की परामर्शक भी हैं|)

***

मज़लूम बच्चे की पुकार

"बच्चे भारत का भविष्य हैं"
यही सपना दिया था ना आपने?
बोलो चाचा?
हिन्द का बच्चा-बच्चा झूम उठा था !
खूब दीं हमें -
योजना पर योजना
घोषणा पर घोषणा
यहाँ तक कि एक दिन भी दे दिया -
"बाल-दिवस"
सपने दिए, भाषण दिए
नहीं दी तो केवल रोटी
नहीं दिया तो केवल घर
नहीं दी तो केवल शिक्षा
नहीं दिया तो केवल वर्तमान
भूखे, अनपढ़ वर्तमान से
कैसे बनता भविष्य सुनहरा?
बोलो?

आज़ादी के ६५ बरसों में
इस लंबे सफ़र में
हम भी मुसाफ़िर थे
जोहते रहे बाट
क्या दिया हमें?
बाल-श्रम का अभिशाप
बाल-विवाह की बेड़ियाँ
अनाथालयों का नर्क
कुकर्म, अनाचार, अत्याचार
असह्य वेदना, पीड़ा और आँसू
आह!

इक्कीसवीं सदी के बाशिन्दो
विकास दर बताने वालो
"India is shining" कहने वालो
देखो तुम्हारी रेशम के नीचे का घाव
इसकी रिसती मवाद तुम्हारे रेशम को सड़ा देगी
तुम्हारी कीमती रेशम
रह जाएगी बदबू का ढेर
जिसका भविष्य आलीशान सोफ़े नहीं
कचरे की ढेरी होगा!

अभी समय है चेत जाओ
इस घाव को मरहम दो
प्यार से सुश्रूषा करो
सहलाओ, स्नेह से भर दो
जब होगा सर्वांग स्वस्थ
तभी दमकेगी काया
सुधार लो वर्तमान
भविष्य स्वयं सुधर जाएगा!

***

बस सच्चाईयाँ ही बाकी हैं अब

बस सच्चाईयाँ ही बाकी हैं अब!

तुम्हारी, उसकी, उसकी, उनकी...
निर्जीव..सिर्फ यादों में!
कहते हैं यादों का भी रंग होता है
लेकिन ये तो सच्चाईयाँ हैं..
इनका तो एक ही रंग होता है,
होना चाहिए-- सफ़ेद!
सफ़ेद?

पता नहीं...
लेकिन वो हैं!
और मेरे उदास जीवन को,
वे और उदास कर जाती हैं!

मेरे चारों ओर फैली ये पहाड़ों सी
सच्चाईयाँ .....

इनमें घिर के, बीध के,

औरों का हज़ार बार बोला झूठ 'सच'

और बिलकुल कोरा, सच्चा, मेरा सच--
मेरा 'मैं' मुझे अक्सर
झूठा लगने लगता है!

सोचती हूँ रातों में,
इन सच्चाईयों के सन्नाटों के शोर में..
कैसा निर्णय हुआ ये हर बार की,
सभी की सारी सच्चाईयाँ,
जीत गयीं!
हारी तो बस मैं

तुम्हारी, उसकी, उसकी, उनकी...
सारी सच्चाईयाँ सच हुईं !!

एक मेरी सच्चाई को छोड़ के...!!!

***

चित्रकार : हेनरी मातिस

प्रेम की बात

यह एक शब्द है 'प्रेम', मैं बहुधा ही इस के अर्थ को लेकर भ्रमित रहता हूँ. क्या अर्थ है इस शब्द का एक ही अर्थ है, या कई अर्थ हैं क्या कोई स्थिर अर्थ है या अर्थ बदलते रहते हैं काल, परिस्तिथियों, समय व्यक्ति के अनुसार क्या हर व्यक्ति के लिए उस का वही अर्थ है या अलग अलग परिस्थिति जन्य अर्थ, पारिवारिक संबंधों से उपजे भाव भी प्रेम है| तो गैर पारिवारिक संबंधों से उपजे भावों को भी प्रेम क्यूँ कहते हैं !

संभवतः शब्द प्रेम का प्रयोग बहुत व्यापक और भ्रमित करने वाला है और हम अनेकों भावों की अभिव्यक्ति या परिभाषा के लिए भी यही शब्द प्रयोग करते हैं. प्रेम के भावों से मिलते जुलते भी अनेक भाव हैं, मैं सोचता हूँ मोह क्या है, नेह क्या है, सम्मोहन का क्या अर्थ है?अनुराग किस भाव को कहेंगे, क्या मुग्ध हो जाना प्रेम का पूर्वानुरोध है? ऐसा क्यूँ होता है कि किसी के साथ चाय का एक प्याला पीते पीते मोह हो जाता है तो किसी के साथ जीवन का लंबा समय व्यतीत कर के कोई सम्मोहन नहीं महसूस करता है। कैसे किसी के साथ दो क्षण में अनुराग पनप जाता है और कैसे अनेकों लोगों से केवल एक तटस्थ सम्बन्ध ही बने रह पाते हैं। कौन सी मानसिकता, कौन सा रसायन लोगों के बीच में काम करता है। स्त्री - पुरुष के बीच मानवीय समीकरण किस प्रकार विकसित होते हैं। इस सारे भावों के बीच में ह्रदय कहाँ है। मन कहाँ है और अंतर्मन की गहराइयां कितनी होती हैं। शरीर की क्या भूमिका है ? प्रेम की सीमाएं कहाँ समाप्त होती हैं और वासना की कहाँ प्रारंभ ? क्या प्रेम की पराकाष्ठा शारीरिक संयोजन है या प्रेम अपने आप में अलग थलग भी जीवित रह सकता है ? क्या बिना शरीर की कल्पना के भी प्रेम संभव है? रूप की क्या भूमिका होती है, प्रेम और सौंदर्य का क्या अन्तर्सम्बन्ध है, क्या रूप का अर्थ अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग होता है, या रूप केवल दृष्टि भ्रम या दृष्टि दोष है?

वह प्रेम क्या होता है जिसे अंग्रेजी में 'प्लेटोनिक लव' कहते हैं। और इन सारे भावों

वह प्रेम क्या होता है जिसे अंग्रेजी में 'प्लेटोनिक लव' कहते हैं। और इन सारे भावों के बीच में आखिर रोमांस क्या होता है क्या मन की उड़ान को रोमांस कहते हैं? तो प्रेम की फंतासी क्या होती है प्रेम और कल्पना की उड़ान का आपस में क्या संबंध है, मिलन की उत्सुकता, विछोह की पीड़ा, प्रतीक्षा का रोमांच, किसी के साथ आकाश में उड़ने की कल्पना , किसी के दुख पर स्वयम दुखी हो जाना, किसी के माथे पर चिंता की एक रेखा देख कर स्वयम चिंता के सागर में डूब जाना, किसी के लिए जीवन को बलिवेदी पर चढ़ा देना, और कई बार सम्मोहन के दो क्षणों को ही जीवन की सम्पूर्ण धरोहर समझ बैठना यह सब क्या है? क्यूँ किसी की स्मृतियाँ वर्षों सालती रहती हैं, क्यूँ किसी का सानिध्य वाष्प की भांति दो क्षणों में हवा में विलीन हो जाता है.

वह प्रेम क्या होता है जिसे अंग्रेजी में 'प्लेटोनिक लव' कहते हैं। और इन सारे भावों के बीच में आखिर रोमांस क्या होता है क्या मन की उड़ान को रोमांस कहते हैं? तो प्रेम की फंतासी क्या होती है प्रेम और कल्पना की उड़ान का आपस में क्या संबंध है, मिलन की उत्सुकता, विछोह की पीड़ा, प्रतीक्षा का रोमांच, किसी के साथ आकाश में उड़ने की कल्पना , किसी के दुख पर स्वयम दुखी हो जाना, किसी के माथे पर चिंता की एक रेखा देख कर स्वयम चिंता के सागर में डूब जाना, किसी के लिए जीवन को बलिवेदी पर चढ़ा देना, और कई बार सम्मोहन के दो क्षणों को ही जीवन की सम्पूर्ण धरोहर समझ बैठना यह सब क्या है? क्यूँ किसी की स्मृतियाँ वर्षों सालती रहती हैं, क्यूँ किसी का सानिध्य वाष्प की भांति दो क्षणों में हवा में विलीन हो जाता है.

मैं भी जीवन के इन अनेकों 'प्रेम' के भावों से गुज़रा हूँ और उन्हें कविता के मीडियम से चिन्हांकित करने का प्रयास करता रहता हूँ.

***

कविता • निशा कुलश्रेष्ठ

दिले नादाँ...

फ़र्ज़ उसने भी निभाया अपना
फ़र्ज़ हमने भी निभाया अपना
न उसने हमसे शिकायत की
न हमने किया गिला कोई

इस तरह नादाँ दिल बस भूलता गया
और रास्ता दर रास्ता गुज़रता गया

न उसने ही खायी कसमें
न हमने ही खायी कसमें
बस जी लिए हम ज़िंदगी
इस तरह से कशमकश में

जो दरमियाँ था रिश्ता वो यूं बिखरता गया
और ये नादाँ दिल उस से मुंह फेरता गया

वो इक दौर था जो गुज़र गया
इक मोड़ था जो बदल गया
अब न वो ढूंढता है हमको
न देखते हैं अब हम उसको

वो इक हल्का सा सुरूर था जो उतर गया
ये दिल जिस के नशे में मगरूर था

माँ

मेरे पूजा के कमरे में
अंगड़ाई लेता हुआ
अगरबत्ती का धुँआ
गुजरता है मेरे पहलु से
अपनी खास गंध के साथ

तो याद आता है मुझे
वो संकट मोचन मंदिर
जहाँ गुजारी थी मैने
इलाहाबाद की
अनगिनत शामें.....

याद आता है मुझे
अपनी भूख समेटे
प्रसाद की आस में
मंदिर की सीढ़ी पर बैठा
वो बच्चा
जिसकी उदास आँखों में
पलती थी बस एक चाहत
पत्थर होने की
ताकि वो भी पूजा जाता
भक्त भोग चढ़ाते
और
कभी न भूखा सोता....

याद आता है मुझे
अपना मौन रह जाना

उसे कैसे समझाता
इंसानो की तरह ही
हर पत्थर के
अलग अलग नसीब होते हैं
कोई मंदिर में जड़ता है
कोई गहनों में,
तो कोई कब्र पर
मुर्दों के करीब होते हैं...
और
याद आती है मुझे

माँ!!
जिसके पार्थिव शरीर के करीब भी
यही खास अगरबत्ती जलती थी
और उस कमरे में भी
बिखरती थी यही गंध...
जो बसी है मेरे रग रग में
और रहती है मेरे संग!!

***

पगडंडी

द्रुमों की कतार को चीरते
नदियों के तीरे होते
एक पगडंडी निकलती है
जो मेरे गाँव को जाती है ।
अनगिनत पैरों के निशान को
वर्षों के इतिहास को
बखूबी समेटती जाती है
जो मेरे गाँव को जाती है ।
दूर तक फैली धान की बालियाँ
मंजरों से लदी आम की डालियाँ
सुगंध इनकी हवा में समाती है
जो मेरे गाँव को जाती है।
चिड़ियों की चहचहाहट से
चूड़ियों की खनखनाहट से
एक मधुर स्वरलहरी जगती है
जो मेरे गाँव को जाती है ।
बैलों के गले की घंटियाँ बजतीं
पनघट पे जाने को सुंदरियां सजतीं
एक मदमस्त पवन बहती है
जो मेरे गाँव को जाती है ।
सावन में बूंदें बरसती हैं
झूलों की रस्सियाँ बंधती हैं
एक सोंधी खुशबू उड़ती है
जो मेरे गाँव को जाती है ।
बहुत प्यारा है मेरा गाँव
दिल ढूंढता वही बरगद की छाँव
पगडंडी वह बार - बार बुलाती है
जो मेरे गाँव को जाती है।

***

मुश्किल नहीं वो ज़िंदगी कैसी
सूनी राह पर हमसफ़र कैसा

- पंकज त्रिवेदी

भूख

लंच की घंटी बजी.

रमा ने सुरभि से पूछा, "आज टिफिन में क्या लाई है?"

सुरभि ने मुँह बनाकर कहा, "क्या होगा टिफिन में,वही रोज की तरह मम्मी ने घास-फूस रखा होगा. यार ऐसा खाना खाते-खाते मेरी तो भूख ही मर गई है, पता नहीं लोग इसे खा कैसे लेते हैं? चल हम दोनों कैंटीन में जाकर कुछ खाते है."

रमा ने कहा, " सुरभि फिर इस खाने का क्या करेगी?"

सुरभि बोली, "अरे वही जो रोज करती हूँ. स्कूल के पीछे वाले गेट से बाहर फेंक दूंगी."

रमा बोली,"ठीक है तू तब तक इसे फेंककर आ, मैं तुझे कैंटीन में ही मिलती हूँ."

सुरभि अपना टिफिन लेकर उसी जगह पहुँच गई जहाँ वह अपना खाना अक्सर फेंका करती थी. उसने देखा कि गेट के पास एक फटेहाल लड़की एक ईंट के ऊपर बैठी हुई है, वह लड़की सुरभि को देखकर कुछ झेंप गई. उसके हाव-भाव को देख सुरभि के मन में कुछ संदेह हुआ कि अवश्य ही यह कुछ छुपा रही है. हो न हो इसने कुछ चोरी की है. सुरभि चुपचाप वहां से वापस चल दी और वही थोड़ी दूर जाकर एक दीवार के पीछे छिप गई. उस लड़की ने सुरभि के जाते ही उस ईंट को उठाया जिस पर वह बैठी हुई थी और एक मिट्टी से सनी हुई रोटी निकाली, उसे अच्छी तरह झाड़ा और खाने लगी. सुरभि ने यह सब देखा तो उसकी आत्मा काँप उठी, यह वही रोटी थी जिसे उसने कल अपने टिफिन में से निकालकर फेंका था.

सुरभि नम आँखें लिए अपना टिफिन लेकर लंच करने अपनी कक्षा की ओर चल दी. उसे बहुत तेज भूख लग आई थी.

***

ये मौजूदगी है तेरी और उसका है मुझ पे असर
तार तार होने के बाद भी कितना गहरा है असर

वक्त को ठहरने दो, मन को भी थोडा थमने दो
पहचानो और देखो, खुद के ही दमखम का असर

- पंकज त्रिवेदी

‘वह’ नदी ही तो है / चौखट

‘वह’ नदी ही तो है
लहरो की फ्राक पहने
बुन्दों की पायल बान्धे
ईठलाती, बलखाती,अल्हड़, चंचल, चपला
लहरो की फ्राक कभी पुरानी नही पडती
बुन्दो की पायल कभी नहीं थमती
और अंततः
शिकायत और मुहब्बत से लदी फंदी
अथाह सागर के सीने मे जाकर
सर पटक आती है।
फिर भी
‘ वह’ नदी ही तो है

महज दो रेखाओ जैसी
किनारो मे सिमटना जानती है

कई कई बंधनों में बंधना जानती है
जन्म और मरण
दोनो को लेकर बहना जानती है
फिर भी
‘ वह’ नदी ही तो है
जो --
बेवजह नही सूखती
बेवजह नही उफनती
बेवजह बांध नहीं तोडती
असाध्य प्रमेय (थ्योरम)
इसी तरह सुलझाती है ‘वह’
आखिर ‘ वह’
नदी ही तो है।

***

• शीला डोंगरे

‘खामोश लम्हे’ से...

तुम्हारी खामोशियाँ भी,
मुझे सदाएँ देती है |
अनकही बात भी,
मेरी धडकने सुन लेती हैं |

***

जब भी तुम्हारे खामोश लम्हे सदा देंगे ..
इन्ही पन्नो पर वह दस्तक देंगे ..!!
ख़ामोशी की सिहाई में ..
कुछ लफ्ज तो हमारे नाम भी दर्ज होंगे..!!

***

फिर भी जश्ने आजादी

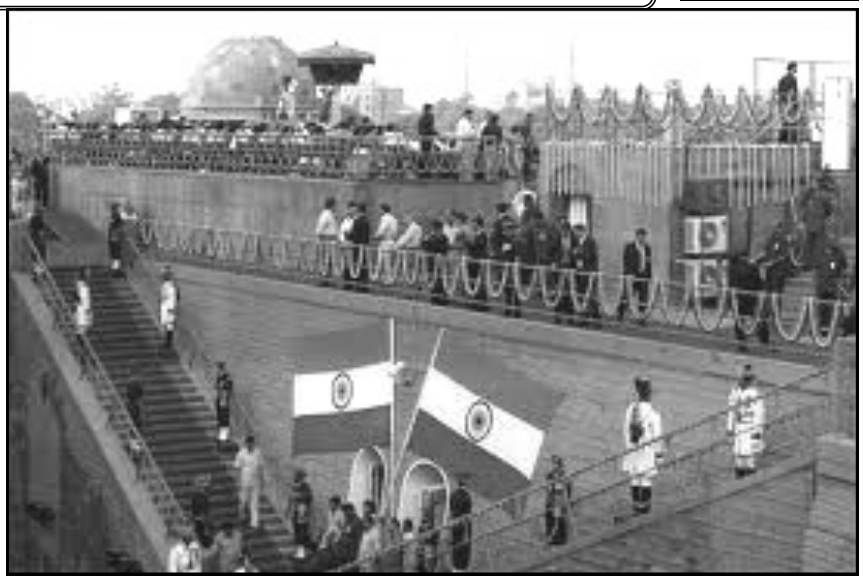

तड़प रही है आबादी
फिर भी जश्ने आजादी

जन-गण में लाचारी
भूख, गरीबी, बेकारी
हर चेहरा फरियादी
फिर भी जश्ने आजादी

दर्द हैं, तकलीफें हैं
चिंता की लकीरें हैं
चुनौतियां बेमियादी
फिर भी जश्ने आजादी

ना बिजली, ना पानी
मार रही ये गिरानी
खुशियां तो मियादी
फिर भी जश्ने आजादी

मजहब की दरारें हैं
जाति की दीवारें हैं
हुकूमत करे फसादी
फिर भी जश्ने आजादी

आगे-पीछे घातें हैं
आतंकी बिसाते हैं
खतरे में जिन्दगानी
फिर भी जश्ने आजादी

सीने में लिए अंगारे
बेजुबानों की कतारें
जख्मों के सब आदी
फिर भी जश्ने आजादी

सत्ता की चाल पुरानी
रिश्वत और बेईमानी
दागदार हो गयी खादी
फिर भी जश्ने आजादी

वही सिसकियां रहीं
कहीं तब्दीलियां नहीं
कागजी है कामयाबी
फिर भी जश्ने आजादी

अंदाज बदलता रहा
और रूप बदलता रहा
रह गयी वही गुलामी
फिर भी जश्ने आजादी

चारों तरफ बदहाली
आंखों में तंगहाली
नयी जंग की मुनादी
फिर भी जश्ने आजादी

***

माँ ! अब लौट चलें...

मैं जानती हूँ माँ,
कि तुम मुझे बहुत प्यार करती हो।
तभी तो यहाँ आई हो।
माँ! इस दुनिया में ,
जहाँ तुम्हें सदैव अपने,
औरत होने का कर्ज़ चुकाना पड़ा है,
अपनी इच्छाओं को सुलाना पड़ा है,
हर पल इस अहसास को जीवित रखना पड़ा है
कि तुम एक लड़की हो/ एक औरत हो
तुम पुरूष की अनुगामिनी हो,
तुम एक भोग्या हो,खर्चे की पुड़िया हो।
मै जानती हूँ माँ,
जब तुम पैदा हुई थीं,
तब थाली नहीं बजी थी।
तुम्हारे होने की खबर ,
शोक सभा में तब्दील हो गई थी.
तुम्हारी दादी ने कहा था पिता से,
'खर्चा करने को तैयार हो जा,
अभी से बचाना शुरू कर,'
यही बात मेरी दादी ने भी कही थी,
मेरी बड़ी दीदीयों के जन्म पर
जानती हूँ माँ!
कितना सहा है तुमने अपने वक्ष पर
समाज के कटु-व्यंग्यों के तीरों को ।
इसीलिए
तुम आज यह सब कर रही हो,
तुम चाहती हो कि मुझे वह सब न झेलना पड़े
जो तुमने और दीदीयों ने झेला है।

तुम चाहती हो कि मेरा जन्म मातम के माहोल मे न हो,
इसीलिए तुम यहाँ आई हो न माँ?
पिता की आँखों में भी ,
मुझे यही कातरता नज़र आ रही है|
तुम्हारी आँखों में तैरते,
अनकहे शब्दों के कण
तुम्हारे चेहरे की उदासी,
बार-बार सबकी निगाहें बचा,
पेट पर अपना स्नेह भरा स्पर्श देना,

बार-बार प्रभु से क्षमा-याचना,
मुझसे बार-बार माफी माँगना,
यह जता रहा है कि
माँ, तुम मुझसे कितना प्यार करती हो।
मैं, तुम्हारी बेबसी को समझ रही हूँ,
यह भी जानती हूँ कि तुम यहाँ ,
आई नहीं , लाई गई हो
तुम्हें बाध्य किया है इस जग ने,
तुम्हारे अनुभवों और तकलीफों ने,
पर, तनिक सोचो माँ!
डरो नहीं,मैं उतनी कमज़ोर नहीं,
जो इस दुनिया का सामना नहीं कर पाऊँगी,
मुझे बस एक बार –बस एक बार,
इस धरती पर आने तो दो माँ,
मैं विश्वास दिलाती हूँ ,
मैं तुम्हें इस तरह घुट-घुट कर मरने नहीं दूँगी
मैं औरतों को एक नई सोच दूँगी.
उनकी आँखों में नए सपने दूँगी ।
तुम्हारी कोख में रहकर,
मैंने तुम्हारी वेदना को समझा है,जाना है।
तुम्हारी हर सोच, तुम्हारा हर आक्रोश
तुम्हारी बेचैनी, तुम्हारी हर बेबसी को
जिसे तुमने महसूसा है,
मैं वाणी दूँगी
बस! एक बार ---थोड़ा सा विद्रोह कर दो,
मुझे तुम्हारी कोख का कर्ज़ चुकाने दो माँ,
लौट चलो माँ, यहाँ से एक बार
मैं जानती हूँ माँ!
तुम मुझे बहुत प्यार करती हो।
माँ ! आ अब लौट चलें .....

एक मधुर स्वप्न का नाम है - सुभाष

(सुभाष चंद्र बोस की पुण्य तिथि अवसर पर एक अलहदा दृष्टिकोण)

कोई मधुर स्वप्न देखते जब कभी बीच में ही नींद उचट जाती है, तब हमारा अर्ध-चैतन्य मस्तिष्क यही प्रयास करता है कि जल्द ही सोकर उस स्वप्न को पुनः वहीं से पकड़ लें जहां पर व्यवधान आया था और उस सुखद स्वप्न का पूरा आनंद उठाएँ। बस, ऐसे ही एक मधुर स्वप्न का नाम है- 'सुभाष' जिसे करोड़ों भारतीय आँखें विह्वल भाव से एक साथ देख रही थीं कि एक दिन अकस्मात एक हवाई विस्फोट ने उसे बीच में बिखेर दिया। शायद यही कारण है कि आज भी उस मधुर स्वप्न को पुनः पा लेने का प्रयास करते हुये हम यदा-कदा लिख पड़ते हैं, या बोल पड़ते हैं – सुभाष दा जीवित हैं।

इस सुस्वप्न की शुरुआत हुई थी 23 जनवरी 1897 को कटक (उड़ीसा) के जाने-माने प्रतिष्ठित अधिवक्ता रायबहादुर जानकी नाथ की हवेली से जब एक परिचारिका ने हर्षाकुल आकर उन्हें बधाई दी – " बधाई हो सरकार! आपके घर सूर्य उदय हुआ है।" फिर तो देखते ही देखते माता प्रभावती की गोद में जगमगाने वाला यह नन्हा सूरज अपने अलौकिक आलोक से समस्त विश्व को आलोकित करने लगा। यह सुभाष दा के चमत्कारी व्यक्तित्व का ही प्रभाव था जिसने हिटलर जैसे तानाशाह को अपने पूर्व कथन के लिए माफ़ी मांगते हुए यह मांगते हुए यह मांगते हुए यह कर दिया – " मैं तो केवल आठ करोड़ जर्मन जनता का नेता हूँ मगर सुभाष चंद्र बोस तीस करोड़ भारतियों के नेता हैं।"

सचमुच, सुभाष दा तीस करोड़ भारतियों के ही नहीं वरन दुनिया भर के अनगिनत लोगों के भी आदर्श थे। वे जिस ओर कदमपोशी करते असंख्य कदम उनका अनुगामी होते; जब वे बोलते तब मेघों की गर्जना एवं दामिनी की चकाचौंध भी कांतिहीन होकर तकने लगतीं तथा उनकी ओजस्वी वाणी का प्रत्येक शब्द करोड़ों करोड़ कंठों से पुनर्ध्वनित हो अनंत आकाश को गुंजायमान कर देता था-

कदम कदम बढ़ाए जा खुशी के गीत गाये जा।
ये जिंदगी है कौम की तू कौम पे लुटाये जा।

किन्तु सुभाष केवल एक स्वप्न का नाम नहीं था, केवल रायबहादुर जानकीनाथ और प्रभावती के पुत्र का ही नाम नहीं था; बल्कि सुभाष नाम था एक जीवित संघर्ष का, आत्मविश्वास एवं दृढ़ता की प्रतिमूर्ति का जिसका एक एक कर्म बल्कि सारा जीवन ही एक किवदंती बन गया। परतंत्रता का वह समय ऐसा था जब आई सी एस होना ही किसी भारतीय के लिए चंद्रविजय जैसा अविश्वासनीय कार्य होता था और आई सी एस होकर भी उसे ठुकरा देना... इट वाज बियाण्ड दी इमेजिन। यह सुभाष दा ही थे जिन्होंने न केवल आई सी एस की परीक्षा

उत्तीर्ण की बल्कि विदेशी सत्ता के अधीन कार्य नहीं करने का कारण बता कर अपनी नियुक्ति की ही खिलाफत की।

और यही बिगुल था उस विदेशी सत्ता के खिलाफ, उस अमानवीय अत्याचारों के खिलाफ जिन्हें न केवल देखा था सुभाष दा ने बल्कि सहा भी था। दुनिया के हर पिता की तरह ही सुभाष दा के पिता भी उन्हें किसी ऊंचे प्रशासनिक पद पर आसीन

देखना चाहते थे, अतः सुभाष दा का यह कार्य उन्हें बड़ा नागवार गुजरा और वे सुभाष दा से नाराज भी हो गए किन्तु सुभाष दा तो मानो कृतसंकल्पित थे –

" सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाजू-ए-दिल में है"

और... फिर तो सिलसिला ही चल पड़ा ब्रिटिश साम्राज्य की खिलाफत और जेल यात्राओं और ब्रिटिश साम्राज्य का उनके प्रति अमानवीय दृष्टिकोण का। किन्तु जिस प्रकार सोना आग में तप कर कुन्दन हो जाता है, वैसे ही हुकुमते बरतानिया से मिले हर जख्म ने सुभाष दा की न केवल हिम्मत आफजाई की बल्कि उन्हें अपने लक्ष्य " स्वतन्त्रता" की ओर निरंतर अग्रसर होते रहने की प्रेरणा भी दी।

सुभाष दा अंग्रेजों को सशस्त्र क्रान्ति के जरिये भारत से खदेड़ देना चाहते थे। उनका मानना था कि स्वतन्त्रता भीख की नहीं वरन अधिकार की वस्तु है। इसीलिए उनका प्रत्येक कदम अपने अधिकार की ओर क्रांतिकारी ढंग से ही उठा। हिटलर से गठबंधन, मुसोलिनी से मित्रता, फारवर्ड ब्लाक की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का गठन ऐसे ही उदाहरण थे। 'उनका हर कदम', सुभाष दा जान गए the कि 'उन्हें उनके लक्ष्य के निकट... और निकट लाता जा रहा है', और उनका यह विश्वास जब सागर गर्जना कि तरह उनके कंठ से उच्चरित होता – " तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा" , तो उनके प्रत्येक सैनिक के रोम रोम में आत्मविश्वास कि बिजली कौंध जाती थी और वे एकमेव स्वर में आकाश को प्रकंपित कर देते थे – " जयहिंद... जयहिंद... जयहिंद..."

किन्तु कहा गया है न 'होइहैं वही जो राम रचि राखा; सो भारत के भाग्य में लिखा 18 अगस्त 1945 का दिन भी आ गया जब एक हवाई विस्फोट ने करोड़ों करोड़ हिंदुस्तानियों के उस स्वप्न परखचे उड़ा दिये। विश्वास न हुआ... आज तक नहीं हुआ... तभी तो हमारे भीतर से कभी कभी प्रश्न उठ खड़ा होता है – " कहीं सुभाष दा जीवित तो नहीं?" मगर मेरी नजर में अहम प्रश्न यह नहीं कि क्या सुभाष दा जीवित हैं? बल्कि अहम प्रश्न यह है कि क्या यह प्रश्न उचित है? सुभाष दा तो हमारे दिलों के धड़कन थे, हैं और रहेंगे तथा हमारी प्रत्येक आती जाती श्वांस के साथ फुसफुसा कर हमें सचेत करते रहेंगे – " सेव योरसेल्फ !"

***

अल्हड लडकी का चाँद

खुल गयी अम्बर की गांठ
छिटके तारे
नाजुक से फाहे बादलों के बीच से
उतरे तुम
रात के चमकीले शामियाने के सजीले चितचोर
रात की झिलमिल झील की पतवार
दुनिया भर की प्रेम कथाओं के कोहिनूर
तुम्हारा वजूद
आसमां से जमीं तक
मुझ से होकर उतरता है हर रात
ओ मेरे राजदार
मेरे दोस्त
चाँद
उस दिन तुम भी मुझे दुनिया के पैरोकार से लगते हो
जब घूरते हो मुझे टुकुर टुकुर
यूँ घूरना तुम्हारा
मुझे तब अच्छा नहीं लगता जब
हिरनियों की तरह तेजी से
मैं उलझनों के जंगल पार कर लेना चाहती हूँ
प्यार को तीनों सप्तकों तक
गुनगुना लेना चाहती हूँ
मैं किताब का हरेक लफ़्ज
ख़ुद के मुताबिक़ पढ़ लेना चाहती हूँ

जानती हूँ तुम्हे नींद की चादर मुझे उड़ानी है चाँद
पर कुछ रातों की मनचाही उड़ान
कई सुबहे तरोताज़ा बना देती हैं
जागने की मोहलत
माँगती हूँ मैं तुमसे चाँद
मत तको यूँ
ना टुकुर टुकुर मुझे
ओ दुनिया भर की प्रेम कथाओं के कोहिनूर ....

***

कविता • चेतन रामकिशन

भाई बहन

भाई बहन के मन में देखो उमड़ रहा है प्यार!
एक साल के बाद जो आया राखी का त्यौहार!

भाई के चेहरे पर देखो, खिली खिली मुस्कान!
हर एक दिशा में गूँज रहे हैं, मधुर सुरीले गान!
भाई लेता है बहनों की, रक्षा का संकल्प,
और बहन भी करती देखो, भैया का सम्मान!

बहनों की रक्षा को भाई, हर क्षण है तैयार!
भाई बहन के मन में देखो उमड़ रहा है प्यार....

भाई के हाथों में बहनें, बांधे प्रेम की डोर!
आंखे प्रेम से भीग रही हैं, मन भी भाव-विभोर!
इस अवसर पर प्रकृति के मन में भी उल्लास,
उपवन देखो मुस्काया है, वन में नाचे मोर!

भाई अपनी बहन को देता, प्यार भरा उपहार!
भाई बहन के मन में देखो उमड़ रहा है प्यार....

रक्षा बंधन भाई बहन के अपनेपन का सार!
रक्षा बंधन करे सुगन्धित, उनका घर-संसार!
इस राखी के पर्व पे देखो, "देव" बड़ा ही हर्ष,
हर मन से स्फुट होती है, प्रेम की मधुर फुहार!

रक्षा बंधन हमे सिखाता, आदर और सत्कार!
भाई बहन के मन में देखो उमड़ रहा है प्यार!"

गज़ल • सौरभ पाण्डेय

भीतरघात

रात की ऐय्यारियाँ* हैं, दिन चढ़ा परवान है |
एक शहज़ादा बनाया जा रहा सुल्तान है

**

आदमी, या वस्तु है या आँकड़ों का अंक भर
या, किसी परियोजना का तुक मिला उन्वान2 है
**

आह पीड़ा आँसुओं का साथ है, अच्छा हुआ..
है छली जयकार कितनी मित्र मुझको भान है
**

यों कुटिल हर चाल उसकी है अहं में चूर वो
पर वही सोसायटी की शान है, सम्मान है
**

राष्ट्र की अवधारणा को तथ्य का संबल मिले
हो समर्पण त्यागमय, विश्वास फिर वरदान है
**

नीति की चलती नहीं, बाज़ार तय करते दिशा
यह हमारे वक़्त की सबसे सही पहचान है
**

हर मुलायम कल्पना साकार प्रिय होती गयी
आर्द्र है वातावरण तू, उर मेरा उद्यान है

****

1. ऐय्यारी - भीतरघात, छल ; 2. उन्वान - शीर्षक

***

नासिक में शीला डोंगरे का व्याख्यान और सुरेंद्रनगर में 'नव्या' की बैठक

रोटरी क्लब, नासिक के द्वारा आयोजित एक विशेष साहित्यिक-सामाजिक समारोह में ' नव्या त्रैमासिक' की संपादिका शीला डोंगरे का सम्मान| इस समारोह में **" समकालीन साहित्य की सामाजिक भूमिका"** पर शीला डोंगरे ने व्याख्यान दिया था |

व्यास पीठ पर उपस्थित - अध्यक्ष - श्री अवतार सिह पनफेर,, सचिव -श्री प्रभाकर दवने और शीला डोंगरे

'नव्या' के प्रवेशांक (मई-2012) का लोकार्पण दिल्ली में होने के बाद प्रबंधक संपादक श्री पंकज त्रिवेदी के निवास पर उनके शहर- सुरेन्द्रनगर (गुजरात) के साहित्यकारों की एक बैठक में ' नव्या' का लोकार्पण करने के बाद अपने विचार प्रकट करते हुए **डॉ. रामचरण हर्षाणा |**

डॉ. रामचरण खुद हिन्दी-अंग्रेजी कथाकार हैं और हिन्दी की जानीमानी पत्रिकाओं में लिखते हैं | उनकी अंग्रेजी कहानियाँ " वुमन येरा" में अक्सर प्रकाशित होती रहती हैं |

बी.एड्. कोलेज—लखतर में प्रवेशोत्सव में श्री पंकज त्रिवेदी का वक्तव्य

गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के लखतर तहसील में श्री वी. ऐ. ओझा बी.एड्. कोलेज के द्वारा वर्ष : 2012-13 का प्रवेशोत्सव समारोह का आयोजन किया गया था| जिसमें गुजराती-हिन्दी साहित्यकार और **नव्या के प्रबंधक संपादक श्री पंकज त्रिवेदी** ने **साहित्य-समाज और शिक्षा (बी.एड्. अभ्यासक्रम) का जीवन में महत्त्व** – विषय पर माननीय वक्तव्य दिया था| कार्यक्रम के आरंभ में बी.एड्. कोलेज के **प्राचार्य श्री शैलेश वाढू** ने श्री पंकज त्रिवेदी का स्वागत करके छात्रों से परिचय करवाया था|

सुमित प्रताप सिंह को शब्द साधक सम्मान

नई दिल्लीः लाल कला,सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना मंच (रजि.) द्वारा विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर विश्व में बिगडते हुए पर्यावरण के संरक्षण में युवाओं की भूमिका पर एक चर्चा एवं काव्य गोष्ठी व सम्मान समारोह का आयोजन अल्फा शैक्षणिक संस्थान स्कूल रोड, मीठापुर में किया गया। जिसमें वक्ता के रुप में डा. हरीश अरोडा प्रो. सान्ध्य डी.ए.वी. कालेज श्री निवासपुरी, नई दिल्ली एवं बल्लवगढ कालेज के पूर्व प्रो.(आचार्य) हवलदार सिंह शास्त्री ने भाग लिया। पर्यावरण पर आधारित रचनाओं का काव्य पाठ भी किया गया, जिसमें भाग लेने वाले कवि थे- डा.ए.कीर्तिवर्धन, श्री प्रदीप गर्ग पराग, पर्यावरणप्रेमी लाल बिहारी लाल, श्री प्रकाश लखानी,श्री एल.एन.गोसाई, श्री दीपक शर्मा कुल्लवी, श्री शिव कुमार ओझा, श्री शिव कुमार प्रेमी, सुश्री महिमा श्री, मो. अब्दुल रहमान, श्री सुरेन्द्र साधक, श्रीमती रेखा रानी, श्री वीरेन्द्र क़मर, श्री भुवनेश सिंघल, श्री भवानी शंकर शुक्ल इत्यादि। इसके अतिरिक्त श्री अर्श अमृतसरी के गज़ल संग्रह ज़िंदगी गज़ल है तथा लाल बिहारी लाल सहित अन्य दस कवियों की रचनाओं पर आधारित काव्य संग्रह **बस इसी एक आस में** का भी लोकार्पण किया गया। इस कार्यक्रम के विशेष आकर्षण थे दिल्ली गान के रचयिता श्री सुमित प्रताप सिंह जिन्होंने दिल्ली गान को सुना कर वहाँ उपस्थित जनसमूह का मन मोह लिया । डॉ. हरीश अरोड़ा की गज़ल "बेटियाँ" को भी खूब वाहवाही मिली। इस अवसर पर सुमित प्रताप सिंह को लाल कला, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना मंच (रजि.) ने उनके द्वारा साहित्य सृजन में योगदान देने हेतु विशेष रूप से **शब्द साधक सम्मान** से सम्मानित किया। श्रीमति ममता श्रीवास्तव एवं श्री मोहन कुमार को भी क्रमशः सुर साधक सम्मान व स्वास्थ्य श्री सम्मान प्रदान किये गए। इस कार्यक्रम का संयोजन श्री लाल बिहारी लाल, अध्यक्षता आचार्य श्री कृष्णानन्द वर्मा तथा संचालन डा. कीर्तिवर्धन ने किया।

'नव्या - त्रैमासिक पत्रिका' कविवर टैगोर प्रवेशांक लोकार्पण, हिन्दी भवन, दिल्ली

पंकज त्रिवेदी जी साहित्यक परिवेश व् साहित्यिक पारिवारिक पृष्ठ भूमि के अनुरूप पहले एक साहित्यकर्मी व साहित्य प्रेमी हैं, गुजराती साहित्य के साथ हिंदी भाषा व साहित्य के प्रति इनका झुकाव हिंदी प्रचार में लगे सरकारी अमले के लिए हर्ष का बिन्दु है|

पंकज त्रिवेदी के प्रकाशन संस्थान नव्या पब्लिकेशन, सुरेन्द्रनगर, गुजरात के तत्वाधान में इनकी साहित्यक नेट पत्रिका "नव्या" के प्रथम प्रिंट एडिशन का लोकार्पण समारोह नयी दिल्ली के हिंदी भवन में दिनांक १९ मई २०१२ को संपन्न हुआ|

हिंदी साहित्य की विभिन्न विविधताओं की प्रतिनिधि पत्रिका नव्या का प्रकाशन पहले नेट पर अब प्रिंट पर सुरेन्द्रनगर गुजरात से है इसके प्रधान संपादक स्वयं पंकज त्रिवेदी हैं| इनका सहयोग संपादन का अनुभव रखने वाली मृदु भाषी, उर्जावान महिला श्रीमती शीला डोंगरे और हिंदी साहित्य में गहरी आस्था रखने वाली, डॉ. स्वाति नलावडे इ-पत्रिका में संपादक के रूप में कर रही हैं|

एशिया महादीप के महान कवि , नोबेल पुरस्कार विजेता, दो देशो के देशगान के रचयिता श्री गुरु रबीन्द्रनाथ के 150 वीं जयंती के अवसर पर पत्रिका का प्रथम अंक गुरु रविन्द्र नाथ टैगोरे को समर्पित है| जिसमे उनके साहित्यक व व्यक्तिगत रचना संसार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है , नव्या नेट से जुड़े पाठकों को नव्या कितना उत्सुक रख सकेगी यह तो भविष्य की बात है लेकिन एक वर्ष से कम समय में नव्या के संचालक मंडल श्री पंकज त्रिवेदी, शीला डोंगरे और डॉ. स्वाति नलावडे उनके स्तम्भ लेखको को नव्या के प्रिंट एडिशन को सफल प्रारंभ पर हार्दिक बधाई| (दाएँ से श्रीमती शीला डोंगरे, श्री पंकज त्रिवेदी, श्री प्रयाग शुक्ल- "संगना त्रैमासिक" संगीत नाटक अकादमी-दिल्ली, श्री महेश चन्द्र शर्मा- पूर्व महापौर और हिन्दी साहित्य सम्मलेन के अध्यक्ष- दिल्ली, श्री कीर्तिवर्धन)

गिरीश पंकज जी की बहुप्रतीक्षित उपन्यास "एक गाय की आत्मकथा" का विमोचन

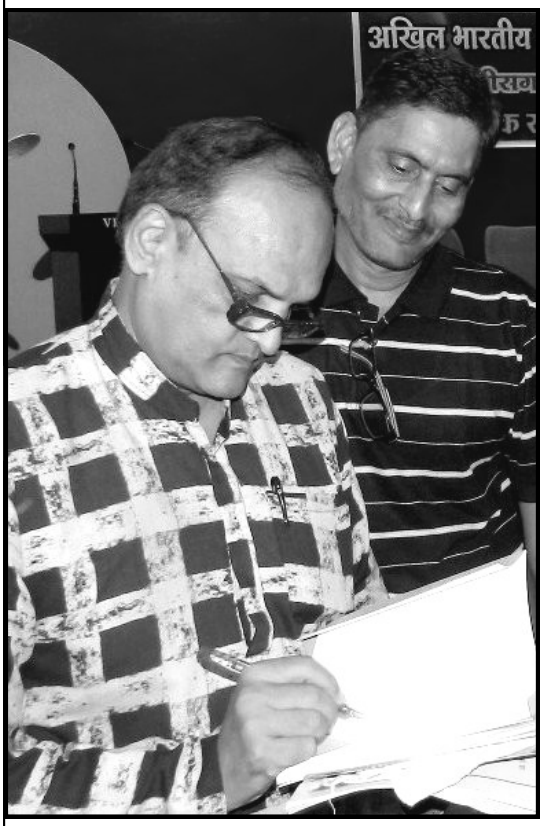

31, जुलाई 2012 शाम को रायपुर के वृन्दावन हाल में साहित्य अकादमी के सदस्य, सद्भावना दर्पण साहित्यिक अनुवाद पत्रिका के सम्पादक और देश में जाने माने प्रखर साहित्यकार, व्यंग्यकार, शायर बड़े भाई आदरणीय गिरीश पंकज जी की बहुप्रतीक्षित उपन्यास "एक गाय की आत्मकथा" का विमोचन छ.ग. शासन के मान. कृषि मंत्री चंद्रशेखर साहू, मान. राज्यसभा सांसद नन्द कुमार साय, गो सेवा आयोग के मान. आध्यक्ष फूलचंद जैन, प्रख्यात साहित्यकार प्रो. चितरंजनकर, गोसेवक मुजफ्फर अली के द्वारा किया गया.... इस भव्य एवं गरिमामय समारोह का आयोजन अखिल भारतीय साहित्य परिषद् छात्तीसगढ़ प्रांत के द्वारा किया गया... समारोह में प्रदेश एवं देश के जाने माने साहित्यकार उपस्थित रहे... आदरणीय बड़े भईया गिरीश पंकज जी को सादर बधाई एवं अगली कृति के लिए हार्दिक शुभकामनाएं... छ ग प्रांत अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के भाई प्रभात मिश्रा, जयप्रकाश एवं साथियों को शानदार आयोजन लिए बधाईयाँ.... आज देश में गौ माता की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रांकन के साथ ही उसके पूजनीय स्वरुप को रोचक कथा के साथ प्रशस्त करने वाले इस उत्कृष्ट उपन्यास जो प्रख्यात साहित्यकार प्रोफे. चितरंजन कर के शब्दों में "मुंशी प्रेमचंद की कालजयी कृति गोदान की उत्तरकथा है", की कीमत मात्र १५० रुपये तथा प्रकाशक वैभव प्रकाशन, रायपुर है.

(चित्र में उपन्यास की प्रति पर मेरे लिए शुभकामना उकेरते आदरणीय श्री गिरीश पंकज जी...)

कार्टून • मस्तान सिंह

त्रुटि सुधार

त्रुटी सुधार मई-2012 प्रवेशांक में निम्न नाम गलत प्रिंट हुए थे ...

डॉ. सरस्वती प्रसाद माथुर	के बदले	डॉ. सरस्वती माथुर
डॉ. मंजरी जोशी	के बदले	डॉ. मंजरी शुक्ला

किताबें

शीला डोंगरे

खामोश लम्हे (कविताएँ)

अखिल हिन्दी साहित्य सभा (अहिसास), डी-4, रोहन परिसर, को.ओ.हा.सोसायटी, राणेनगर, नासिक-422009

मूल्य : 110/-

पंकज त्रिवेदी

झरोखा (निबंध)

हिंद-युग्म
1, जिया सराय,
हौज खास,
नई दिल्ली-16

मूल्य : 99/-

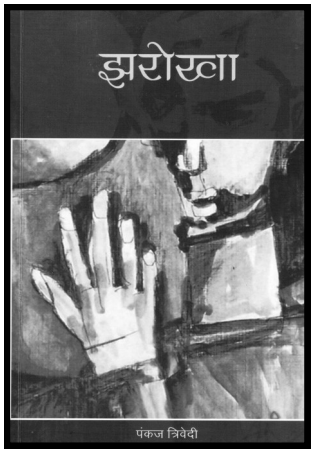

शीला डोंगरे

अजय प्रकाशन

जूही की कली

कविता संग्रह

राम नगर, वर्धा (महाराष्ट्र)

मूल्य : 85/-

अतिथि की झलकियां

दोहराए न जाएं गम के सिलसिले
गुमराह न किये जाएं खुशी के कारवां
ज़िंदगी की लिख सकें जिस पर दास्तां नयी
अब हो नयीं जमीं, हो नया आसमां

*

न शोर न शिकवे की मौहलत
न बयाँ हुए, न समझे गये
अजीब सूरतें ले टूटे हैं
ये सिलसिले दिल के रिश्तों के

*

सच की नकाब पहने वो तो
बड़ी गर्मजोशी से था मिला
अपने यकीन से छले गये हम
अपनी कमानिगाही का है हमें गिला

*

गिरता, सम्हलता, बेखुद दीवानों-सा
है बिखरा-बिखरा ज़िंदगी का काफिलालाख
हमने चाहा बदल दें राहें अपनी
रास्ते का हर मोड उनकी गली से जा मिला

- **शिल्पा सोनटक्के**